

Chapter एक

यदुवंश को शाप

इस अध्याय में यदुवंश के विनाश का संकेत मिलता है, जो लोहे के मूसल की उत्पत्ति के कारण हुआ। इस वृत्तान्त को सुनकर भौतिक जगत से विरक्त होने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने बड़ी ही पटुता से कौरवों तथा पाण्डवों के बीच कुरुक्षेत्र युद्ध रचाया और बहुत हद तक पृथ्वी के भार को दूर किया। किन्तु भगवान्, जो कि अचिन्त्य प्रभावशाली हैं, इतने पर भी सन्तुष्ट नहीं हुए, क्योंकि अजेय यदुवंश का अस्तित्व बना हुआ था। वे यदुवंश का विनाश चाह रहे थे, जिससे वे इस धरा-धाम की अपनी लीलाएँ समाप्त करके स्वधाम वापस जा सकें। उन्होंने ब्राह्मण-सभा द्वारा दिये गये शाप के बहाने, अपने पूरे वंश को इस पृथ्वी से उठा लिया।

श्रीकृष्ण की इच्छानुसार द्वारका के निकट पिण्डारक नामक पवित्र स्थल पर नारद, विश्वामित्र इत्यादि अनेक महर्षियों की सभा एकत्र हुई, जहाँ यदुवंशी तरुण बालक खिलवाड़ करते हुए पहुँचे। इन्होंने साम्ब को एक आसन्न प्रसवा स्त्री का वेश धारण कराकर ऋषियों से साम्ब के तथाकथित गर्भ के फलित होने के विषय में पूछा। ऋषियों ने इन हास-परिहास करने वाले बालकों को शाप दे दिया कि यह स्त्री ऐसे मूसल को जन्म देगी, जो उनके कुल का विनाश करेगा। इन यदुवंशी बालकों ने शाप से भयभीत होकर तुरन्त ही साम्ब के पेट पर से वस्त्रों को उठाकर देखा, तो सचमुच ही उन्हें एक मूसल दिखा। वे तेजी से यदुओं के राजा उग्रसेन की सभा में पहुँचे और जो कुछ हुआ था, उसकी जानकारी दी। ब्राह्मणों के शाप से डरकर यदुराज उग्रसेन ने उस मूसल को चूर्ण चूर्ण कराकर समुद्र में फिकवा दिया। समुद्र में एक मछली ने लोहे के बचे एक टुकड़े को निगल लिया और चूर्ण के शेष टुकड़े लहरों से समुद्र तट पर जा लगे, जहाँ नरकुलों का एक कुँज बन गया। मछुआरों ने इस मछली को पकड़ा और जरा नामक बहेलिए ने मछली के पेट से निकले लोहे के टुकड़े से एक तीर बनाया। यद्यपि परमात्मा श्रीकृष्ण समझ गये थे कि क्या हो रहा है, किन्तु इसके निराकरण के लिए, उन्होंने कुछ भी नहीं करना चाहा, प्रत्युत काल रूप में, उन्होंने इन घटनाओं को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी।

श्रीशुक उवाच

कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ।
भुवोऽवतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुक ने कहा; कृत्वा—सम्पन्न करने के बाद; दैत्य—असुरों का; वधम्—वध; कृष्णः—भगवान् कृष्ण ने; स-रामः—बलराम समेत; यदुभिः—यदुओं द्वारा; वृतः—घिरे हुए; भुवः—पृथ्वी के; अवतारयत्—कम कर दिया; भारम्—भार को; जविष्ठम्—हिंसा कराने वाले; जनयन्—उत्पन्न करते हुए; कलिम्—कलह की स्थिति।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् श्रीकृष्ण ने बलराम से मिलकर तथा यदुवंशियो से घिरे रह कर अनेक असुरों का वध किया। तत्पश्चात्, पृथ्वी का और भार हटाने के लिए भगवान् ने कुरुक्षेत्र के उस महान् युद्ध की योजना की, जो कुरुओं तथा पाण्डवों के बीच सहसा हिंसा के रूप में भड़क उठा।

तात्पर्य : श्रीमद्भागवत का ग्यारहवाँ स्कंध भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा दसवें स्कंध में सम्पन्न लीलाओं का सन्दर्भ देते हुए प्रारम्भ होता है। दसवें स्कंध के प्रारम्भ में इस बात का वर्णन हुआ है कि जब आसुरी शासकों द्वारा पृथ्वी पर अत्यधिक भार हो गया, तो भूमि-रूप साक्षात् पृथ्वी आँखों में आँसू भर कर ब्रह्माजी के पास गई और अपने उद्धार की याचना की। ब्रह्माजी तुरन्त ही देवताओं को साथ लेकर क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में भगवान् से मिलने गये। सारे देवता क्षीर सागर के तट पर आदरपूर्वक प्रतीक्षा करने लगे, तभी भगवान् ने ब्रह्मा के माध्यम से यह घोषित कराया कि वे शीघ्र ही पृथ्वी पर अवतरित होंगे और देवताओं को चाहिए कि उनकी लीलाओं में सहयोग देने के लिए स्वयं भी जन्म लें। इस तरह कृष्ण के आविर्भाव के समय से ही यह पता था कि वे पृथ्वी से असुरों को हटाने के लिए अवतार लेंगे।

जैसाकि श्रील प्रभुपाद ने *भगवद्गीता* (१६.६) की टीका में कहा है, जो लोग शास्त्रों के आदेशों का पालन करने के लिए राजी हो जाते हैं, वे देवता कहलाते हैं और जो लोग वैदिक शास्त्रों के आदेशों का उल्लंघन करते हैं, वे असुर कहलाते हैं। ब्रह्माण्ड में वैदिक वाङ्मय को इसलिए प्रस्तुत किया जाता रहा कि बद्धजीवों का मार्गदर्शन हो सके, क्योंकि वे भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों में फँसे रहकर जन्म-मृत्यु के निरन्तर चक्र में घूमते रहते हैं। वैदिक आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन करके हम अपनी भौतिक आवश्यकताओं की सहज ही पूर्ति कर सकते हैं और उसी के साथ भगवद्धाम वापस जाने का मार्ग भी प्रशस्त कर सकते हैं। इस तरह हम *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* जैसे वैदिक ग्रंथों में प्रस्तुत

भगवान् के उपदेशों का पालन करने मात्र से भगवद्धाम में आनन्द तथा ज्ञान से युक्त नित्य जीवन-लाभ कर सकते हैं। किन्तु असुरगण भगवान् की सत्ता तथा उनके उपदेशों को कम करके देखते हैं या उनकी हँसी उड़ाते हैं। चूँकि ये असुर भगवान् की सार्वभौम सत्ता से ईर्ष्या करते हैं, अतः वे भगवान् की श्वास से निकले वैदिक शास्त्रों की महत्ता को घटाते रहते हैं। ये असुर अपनी सनक के अनुसार समाज की स्थापना करते हैं और उन पवित्र जीवों के लिए जो ईश्वर की इच्छा का अनुसरण करना चाहते हैं, अव्यवस्था तथा कष्ट उत्पन्न करते हैं।

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि जब पृथ्वी पर इस तरह के अव्यवस्थित अधार्मिक समाजों का प्राधान्य होता है, तो वे इस असन्तुलन को ठीक करने के लिए स्वयं अवतरित होते हैं। इस प्रकार कृष्ण ने अपने दिव्य बाल्यकाल से ही, उन शक्तिशाली असुरों का योजनाबद्ध संहार किया, जो पृथ्वी के लिए असह्य भार बने हुए थे। श्रीकृष्ण की सहायता उनके भाई बलराम करते थे और वे भी भगवान् थे। यद्यपि ईश्वर एक हैं, किन्तु वे तुरन्त अनेक रूपों में आनन्द लेने के लिए अपना विस्तार कर सकते हैं। यही उनकी सर्वव्यापकता है। ऐसा प्रथम विस्तार बलराम या बलदेव के रूप में हुआ। बलराम ने कई कुख्यात असुरों का वध किया, जिनमें धेनुकासुर, द्विविद एवं ईर्ष्यालु रुक्मी मुख्य हैं। कृष्ण के साथ यदुवंश के अनेक सदस्य भी रहते थे, जिनमें से अनेक, तो देवता थे, जो भगवान् की सहायता करने के लिए अवतरित हुए थे।

किन्तु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने यह उद्घाटन किया है कि यद्यपि भगवान् की सहायता करने के लिए अनेक देवताओं ने यदुवंश में जन्म ले रखा था, तो भी यदुवंश के कुछ सदस्य कृष्ण के प्रति शत्रुभाव रखते थे। संसारी दृष्टि के कारण, वे अपने को कृष्ण के ही समान स्तर पर मानते थे। भगवान् के कुल में जन्म लेने के कारण, उनमें अचिन्त्य शक्ति थी, इसीलिए वे कृष्ण के परमपद को ठीक से नहीं समझ पाये। वे यह भूल गये कि कृष्ण भगवान् हैं, अतः वे पृथ्वी के लिए गुरु भार बन गये, जिसके फलस्वरूप कृष्ण को उन्हें इस पृथ्वी से हटाना पड़ा। एक लोकप्रिय कहावत है कि “मान घटे नित घर के जाये।” अपने ही वंश के ईर्ष्यालु सदस्यों का विनाश करने के लिए भगवान् ने उनमें झगड़ा करा दिया। इसके लिए उन्होंने नारद तथा अन्य मुनियों द्वारा कार्ष्णी अर्थात् अपने ही परिवार वाले के विरुद्ध क्रोध प्रदर्शित करने की व्यवस्था की। यद्यपि इस बन्धुघाती युद्ध में कृष्ण के

प्रति भक्ति रखने वाले अनेक व्यक्ति मारे गये, किन्तु कृष्ण ने उन्हें उनके आदि अर्थात् देवताओं के पदों पर वापस भेज दिया। *भगवद्गीता* में भगवान् की प्रतिज्ञा है कि वे अपने भक्तों की सदैव रक्षा करते हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की अपनी टीका में पूरे ग्यारहवें स्कन्ध का सारांश दे दिया है, जो इस प्रकार है। अध्याय एक में *मौषल लीला* का शुभारम्भ है, जो कि यदुवंश के विनाश की भूमिका है, दूसरे अध्याय से पाँचवें अध्याय तक नौ योगेन्द्रों तथा राजा निमि के बीच हुई वार्ता दी गई है, छठे अध्याय में ब्रह्मा, शिव तथा स्वर्ग के अन्य वासियों द्वारा की गई स्तुतियाँ हैं, सातवें अध्याय से लेकर उन्तीसवें अध्याय तक कृष्ण तथा उद्धव के बीच हुई वार्ता है, जो *उद्धव-गीता* के नाम से जानी जाती है, तीसवें अध्याय में इस धरा से यदुवंश का विनाश और अन्तिम अध्याय में भगवान् कृष्ण के अन्तर्धान होने का वर्णन मिलता है।

ये कोपिताः सुबहु पाण्डुसुताः सपत्नैर्
दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् ।
कृत्वा निमित्तमितरेतरतः समेतान्
हत्वा नृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ये—वे जो; कोपिताः—क्रुद्ध थे; सु-बहु—बारम्बार; पाण्डु-सुताः—पाण्डु के पुत्र; सपत्नैः—अपने शत्रुओं द्वारा; दुः-द्यूत—कपटपूर्ण जुआ खेलने से; हेलन—अपमान; कच-ग्रहण—(द्रौपदी के) केश का खींचा जाना; आदिभिः—इत्यादि के द्वारा; तान्—उन (पाण्डवों) को; कृत्वा—बनाकर; निमित्तम्—कारण; इतर-इतरतः—एक दूसरे के आमने-सामने; समेतान्—एकत्र हुए; हत्वा—मार करके; नृपान्—राजाओं को; निरहरत्—सदैव के लिए हटा दिया; क्षिति—पृथ्वी के; भारम्—भार को; ईशः—परमेश्वर ने।

चूँकि पाण्डुपुत्र अपने शत्रुओं के अनेकानेक अपराधों से यथा कपटपूर्ण जुआ खेलने, बचनों द्वारा अपमान, द्रौपदी के केशकर्षण तथा अन्य अनेक क्रूर अत्याचारों से क्रुद्ध थे, इसलिए परमेश्वर ने उन पाण्डवों को अपनी इच्छा पूरी करने के लिए कारण-रूप में उपयोग किया। भगवान् कृष्ण ने कुरुक्षेत्र युद्ध के बहाने पृथ्वी पर भार बन रहे सारे राजाओं को अपनी अपनी सेनाओं समेत युद्धभूमि में दोनों ओर से एकत्र कराने की व्यवस्था की और जब भगवान् ने उन्हें युद्ध के माध्यम से मार डाला, तो पृथ्वी का भार हलका हो गया।

तात्पर्य : पाण्डवगण बारम्बार दुर्योधन तथा दुःशासन जैसे शत्रुओं द्वारा सताये जा रहे थे। निर्दोष युवा राजकुमारों के रूप में पाण्डवों का कोई शत्रु न था, किन्तु दुर्योधन अपने असहाय चचेरे भाइयों के

विरुद्ध निरन्तर षडयंत्र करता रहता था। पाण्डवों को लाक्षागृह में भेजा गया, जो बाद में जल कर राख हो गया, उन्हें विष दिया गया और उनकी सती साध्वी पत्नी द्रौपदी के केशों को खींचकर उसे नंगी करने के प्रयास द्वारा खुला अपमान किया गया। इन सारे संकटों में भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों की निरंतर रक्षा करते रहे, क्योंकि वे पूर्णरूपेण उनकी शरण में थे और उनका भगवान् के सिवाय कोई दूसरा आश्रय नहीं था।

इस श्लोक में *इतरेतरतः* शब्द महत्त्वपूर्ण है। कुरुक्षेत्र युद्ध के पूर्व कृष्ण ने पूतना, केशी, अघासुर तथा कंस जैसे अनेक असुरों का वध कर डाला था। अब कृष्ण बच रहे अपवित्र लोगों का वध करके पृथ्वी का भार हटाने का अपना मन्तव्य पूरा करना चाह रहे थे। किन्तु जैसाकि यहाँ पर बतलाया गया है *कृत्वा निमित्तम्* भगवान् ने अपने हाथों से उनका वध नहीं किया, अपितु अर्जुन तथा अन्य पाण्डव स्वभक्तों को इन अपवित्र राजाओं को मारने के लिए शक्ति प्रदान की। इस तरह अपने निकटतम अंशरूप बलराम द्वारा कार्य कराकर और पाण्डवों जैसे शुद्ध भक्तों को शक्ति प्रदान करके धर्म की पुनःस्थापना करते हुए तथा संसार को असुरों से विहीन करते हुए *युगावतार* लीला का प्रदर्शन किया। यद्यपि कुरुक्षेत्र युद्ध का सामान्य उद्देश्य असुरों का संहार करना था, किन्तु कृष्ण की व्यवस्था से कुछ महान् भक्त यथा भीष्म कृष्ण के प्रति शत्रुवत् प्रतीत हो रहे थे। किन्तु जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (१.९.३९)के प्रथम स्कंध में *हतागताः स्वरूपम्* शब्दों द्वारा व्यक्त हुआ है, अनेक महान् भक्तों ने कृष्ण के साथ शत्रु का-सा व्यवहार किया और कृष्ण द्वारा मारे जाने पर, वे अपने मूल दिव्य शरीरों सहित तुरन्त वैकुण्ठ लोक चले गये। चूँकि ईश्वर सर्वोच्च हैं, अतः वध द्वारा वे पृथ्वी से असुरों को हटाने के साथ साथ अपने शुद्ध भक्तों को प्रोत्साहित भी करते हैं।

भूभारराजपृतना यदुभिर्निरस्य

गुप्तैः स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयः ।

मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं

यद्यादवं कुलमहो अविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

भू-भार—पृथ्वी के भार स्वरूप; राज—राजाओं की; पृतना—सेनाएँ; यदुभिः—यदुओं द्वारा; निरस्य—हटाकर; गुप्तैः—रक्षित; स्व-बाहुभिः—अपनी भुजाओं द्वारा; अचिन्तयत्—उन्होंने विचार किया; अप्रमेयः—अगाध भगवान्; मन्ये—मैं सोचता हूँ; अवनेः—पृथ्वी के; ननु—कोई कह सकता है; गतः—चले जाने पर; अपि—लेकिन; अगतम्—न गया हुआ; हि—

निस्सन्देह; भारम्—भार; यत्—क्योंकि; यादवम्—यदु के; कुलम्—कुल को; अहो—ओह; अविषह्यम्—असह्य; आस्ते—रहता है।

भगवान् ने अपने बाहुओं द्वारा संरक्षित यदुवंश का प्रयोग उन राजाओं का सफाया करने के लिए किया, जो अपनी सेनाओं सहित इस पृथ्वी के लिए भार बने हुए थे। तत्पश्चात् अगाध भगवान् ने मन ही मन सोचा, “भले ही कोई यह कहे कि अब पृथ्वी का भार समाप्त हो गया है, किन्तु मेरे मत से यह अब भी दूर नहीं हुआ, क्योंकि अब भी यादव-वंश बचा हुआ है, जिसकी शक्ति पृथ्वी के लिए असहनीय है।”

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने टिप्पणी की है कि यद्यपि सामान्य लोग यह सोच सकते हैं कि असुरों का वध तथा धर्म की पुनर्स्थापना करके भगवान् ने पृथ्वी का भार हटा दिया था, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं पता लगा लिया था कि उनके अपने ही परिवार के सदस्यों के अधार्मिक कार्यों से और भी खतरा था। *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है कि यदि किसी न्यायप्रिय राजा का अपना शत्रु निर्दोष है, तो वह उसे दण्ड देने से मना कर सकता है, किन्तु यदि उसका अपना पुत्र दण्डनीय हो, तो वह उसे दण्ड देगा। इस प्रकार यद्यपि लोक-दृष्टि में भगवान् के वंशज सदैव पूज्य थे, किन्तु भगवान् ने पता लगा लिया था कि यदुवंश के कुछ लोग उनकी घनिष्ठता प्राप्त करके उनकी इच्छा की परवाह नहीं करते हैं। चूँकि भगवान् के सम्बन्धी होने के कारण ऐसे सनकी यदुवंशी लोग मनमाना कार्य कर सकते थे, अतएव वे विश्व के लिए महान् संकट उत्पन्न करेंगे और मूर्ख व्यक्ति ऐसे मनमाने आचरण को कृष्ण की इच्छा मान बैठेंगे। इस तरह भगवान् जिनकी इच्छाएँ अचिन्त्य हैं, यदुवंश के लापरवाह एवं अपमानजनक सदस्यों का संहार करने की आवश्यकता पर विचार करने लगे।

सामान्य लोगों की दृष्टि में भगवान् ने द्वारका तथा मथुरा में अपनी लीलाओं के द्वारा तथा कुरुक्षेत्र के युद्ध में सारे असुरों का वध कर दिया था और अब पृथ्वी अपने भार से मुक्त हो चुकी थी। तो भी अपने ही परिवार के गर्वित सदस्यों के शेष भार से पृथ्वी को मुक्त कराने के लिए उनके बीच बंधुघाती कलह कराकर, उन्हें पृथ्वी से दूर हटा दिया। इस तरह उन्होंने पृथ्वी से अपने तिरोधान का रास्ता तैयार कर दिया।

श्रीधर स्वामी ने इंगित किया है कि *बाहुभिः* शब्द बहुवचन में यह दिखाने के लिए प्रयुक्त हुआ है कि भगवान् ने यदुवंश का विनाश अपने चतुर्भुजी रूप से किया। कृष्ण का आदि गोविन्द रूप द्विभुजी है, किन्तु भगवान् ने चतुर्भुजी नारायण के स्वांश रूप द्वारा इस पृथ्वी के सारे असुरों का संहार किया और अन्त में अपने ही परिवार के भारस्वरूप सदस्यों का सफाया किया। यह प्रश्न किया जा सकता है कि यदि यदुवंश के कुछ सदस्य भगवान् की इच्छा के विरुद्ध हो गये थे, तो फिर उन्होंने पृथ्वी से अपने हटाये जाने की भगवान् की योजना का विरोध क्यों नहीं किया? इसीलिए *अप्रमेयः* शब्द का प्रयोग हुआ है, जो इस बात का सूचक है कि कोई भी मनुष्य यहाँ तक कि भगवान् के परिवार वाले भी उनकी इच्छा को पूरी तरह समझ पाने में असमर्थ होते हैं।

श्रील जीव गोस्वामी ने यदुवंश के विनाश का अन्य कारण दिया है। वे इस बात पर बल देते हैं कि भगवान् के कार्यों को कभी भी सामान्य भौतिक कार्य नहीं समझना चाहिए। न ही भगवान् के संगियों को सामान्य व्यक्ति। यद्यपि भगवान् कृष्ण इस जगत में कुछ काल के लिए अवतरित होते हैं और फिर चले जाते हैं, किन्तु यह समझ लेना चाहिए कि वे अपने संगियों सहित श्री गोकुल, मथुरा तथा द्वारका जैसे विविध धामों में नित्य स्थित रहते हैं। यदुवंश के सदस्य भगवान् के नित्य संगी हैं, अतएव भगवान् से विलग होना उन्हें सह्य नहीं है। चूँकि कृष्ण अपनी पार्थिव लीलाएँ समाप्त करने वाले थे, अतः यदि वे यदुवंशियों को इस धरा पर छोड़ जाते, तो वे उनकी अनुपस्थिति से इतने क्षुब्ध हो उठते कि सारी पृथ्वी को रौंदकर विनष्ट कर डालते। इसीलिए कृष्ण ने अपने अन्तर्धान होने से पहले यदुवंश के अन्तर्धान हो जाने की व्यवस्था पूरी की।

श्रील जीव गोस्वामी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदुवंशियों को अधार्मिक नहीं माना जाना चाहिए। वैष्णव आचार्यों ने उल्लेख किया है कि यदुवंश के अन्तर्धान होने की कथा बद्धजीवों को भवबन्धन से मुक्ति पाने में सहायक बनाने के लिए है। तीनों लोकों में यदुवंश के समान शक्तिशाली तथा ऐश्वर्यशाली कोई नहीं था। भगवान् असीम ऐश्वर्य—सौन्दर्य, शक्ति, ज्ञान, यश इत्यादि—के स्वामी हैं और यदुवंश के सदस्य भी भगवान् के निजी संगी होने के कारण अचिन्त्य ऐश्वर्य से युक्त थे। अतएव जब हम देखते हैं कि बन्धुघाती युद्ध ने किस तरह यदुवंशियों को उनकी सारी पार्थिव सम्पत्ति तथा उनके प्राणों तक से विहीन कर दिया, तो हम यह समझ सकते हैं कि इस भौतिक जगत में कोई भी

स्थायी पद नहीं है। दूसरे शब्दों में, यद्यपि यदुवंश के सदस्य कृष्ण के नित्य संगी थे और तुरन्त ही अन्य लोक को स्थानान्तरित कर दिये, गये जहाँ भगवान् प्रकट होने जा रहे थे, किन्तु बन्धुघाती युद्ध से उनका सहसा अन्तर्धान होना बद्धजीवों को यह बतलाने के लिए है कि यह संसार नश्वर है। इसलिए यदुवंश के कुछ सदस्यों का कृष्ण के प्रति विमुख होने या शत्रुता को उनकी अधार्मिकता के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। यह सम्पूर्ण परिस्थिति बद्धजीवों को पाठ पढ़ाने की भगवान् कृष्ण की योजना थी। इस सन्दर्भ में श्रील जीव गोस्वामी ने *भागवत* से अनेक श्लोक उद्धृत करते हुए यह सिद्ध करना चाहा है कि यदुवंश के सदस्यों ने अनेक पुण्यकर्मों एवं भगवान् कृष्ण के विचार में पूर्ण निमग्नता के कारण ही भगवान् के परिवार में जन्म लिया था। वस्तुतः यह कहा जाता है कि वे कृष्ण का चिन्तन करने के कारण सोते, चलते, बैठते तथा बोलते हुए अपने आप को स्मरण रख पाने में असमर्थ थे।

श्रीमद्भागवत (१.१५-३३) के प्रथम स्कंध में श्रील प्रभुपाद ने यदुवंश के लोप होने पर निम्नवत् टीका की है, “सूर्य का अस्त होना सूर्य के अन्त का द्योतक नहीं है। इसका अर्थ है कि सूर्य हमारी दृष्टि से ओझल है। इसी तरह किसी विशेष लोक या ब्रह्माण्ड में भगवान् के मिशन के अन्त का यही अभिप्राय है कि वे हमारी दृष्टि से ओझल रहते हैं। यदुवंश के अन्त का भी यह अर्थ नहीं है कि उसका विनाश हो गया। वह भगवान् के साथ ही हमारी दृष्टि से ओझल हो गया।”

नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्कथञ्चिन्
 मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ।
 अन्तः कलिं यदुकुलस्य विधाय वेणु
 स्तम्बस्य वह्निमिव शान्तिमुपैमि धाम ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एव—निश्चय ही; अन्यतः—अन्य कारण से; परिभवः—हार; अस्य—इस (वंश) की; भवेत्—हो सकती है; कथञ्चित्—किसी भी तरह से; मत्-संश्रयस्य—मेरे शरणागत की; विभव—अपनी शक्ति के; उन्नहनस्य—असीम; नित्यम्—सदैव; अन्तः—भीतर; कलिम्—कलह; यदु-कुलस्य—यदुवंश का; विधाय—प्रोत्साहित करके; वेणु-स्तम्बस्य—बाँस के कुंज की; वह्निम्—आग; इव—मानो; शान्तिम्—शान्ति; उपैमि—प्राप्त करूँगा; धाम—अपना निजी नित्य वासस्थान।

भगवान् कृष्ण ने सोचा, “इस यदुवंश के सदस्य सदैव मेरे पूरी तरह से शरणागत रहे हैं और इनका ऐश्वर्य असीम है, अतः कोई भी बाहरी ताकत इस वंश को पराजित नहीं कर पाई। किन्तु यदि मैं इस वंश के भीतर कलह को प्रोत्साहित करूँ, तो वह कलह बाँस के कुंज में घर्षण से

उत्पन्न अग्नि की तरह कार्य करेगा। तब मैं अपना असली मन्तव्य प्राप्त करके अपने नित्य धाम को लौट सकूँगा।”

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण यदुवंश के सदस्यों के लोप की व्यवस्था करना चाहते हुए भी स्वयं उनका उस तरह वध नहीं कर सकते थे, जिस तरह उन्होंने अनेक असुरों को मारा था, क्योंकि यदुवंश उनका अपना वंश था। तब यह प्रश्न किया जा सकता है कि कृष्ण ने अन्यो के द्वारा उनके वध किये जाने की व्यवस्था क्यों नहीं की? इसीलिए इस श्लोक में कहा गया है *नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत् कथञ्चित्*—चूँकि यदुवंश उनका अपना वंश था, इसलिए ब्रह्माण्ड का कोई भी व्यक्ति, यहाँ तक कि देवता भी, उसका संहार करने में समर्थ नहीं थे। वास्तव में, जैसाकि विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर संकेत करते हैं, इस ब्रह्माण्ड के भीतर यदुवंश के सदस्यों का कोई अपमान भी नहीं कर सकता था, उन्हें हराने या मारने की बात तो दूर रही। इसका कारण *मत्संश्रयस्य* शब्दों द्वारा दिया गया है। यदुवंशियों ने कृष्ण की पूर्ण शरण ले रखी थी, अतएव उन्हें सदैव भगवान् का निजी संरक्षण प्राप्त था। कहा गया है—*मारे कृष्ण राखे के, राखे कृष्ण मारे के*—यदि कृष्ण किसी की रक्षा करते हैं, तो उसे कोई नहीं मार सकता और यदि कृष्ण मारना चाहते हैं, तो उसे कोई बचा नहीं सकता। कृष्ण ने पहले से अपने सारे संगियों तथा देवताओं से पृथ्वी में प्रकट होने के लिए अनुरोध कर रखा था, जिससे उनकी लीलाओं में वे सहायक बन सकें। अब जबकि इस विशेष लोक में उनकी लीलाओं का अन्त होने जा रहा था और वे लीलाएँ किसी अन्य ब्रह्माण्ड के अन्य किसी लोक में स्थानान्तरित होने जा रही थीं, तो कृष्ण अपने सारे संगियों को इस धरा से हटा देना चाहते थे जिससे उनकी अनुपस्थिति में वे भार न बन सकें। चूँकि भगवान् का अपना ही वंश होने तथा अपनी ही सेना होने से शक्तिशाली यदुवंश संभवतः किसी के द्वारा पराजित नहीं किया जा सकता था, इसलिए कृष्ण ने उसमें आन्तरिक कलह करायी, जिस तरह बाँस के जंगल में वायु बाँसों को परस्पर घर्षित करके अग्नि उत्पन्न कर देती है, जिससे सारा जंगल भस्म हो जाता है।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने संकेत किया है कि यदुवंश के साहसिक कार्यों को सुनकर सामान्य लोग यह सोच सकते हैं कि यदुवंश के वीर भी कृष्ण की ही तरह पूजनीय हैं या स्वतंत्र नियन्ता हैं। दूसरे शब्दों में, मायावाद-दर्शन से दूषित लोग यदुवंश को कृष्ण जैसे पद पर स्थित समझ सकते हैं।

इसलिए यह स्थापित करने के लिए कि सर्वाधिक शक्तिमान जीव तक कभी भी न तो भगवान् के समान हो सकता है, न उनसे आगे जा सकता है, कृष्ण ने यदुवंश के विनाश की व्यवस्था की।

एवं व्यवसितो राजन्सत्यसङ्कल्प ईश्वरः ।

शापव्याजेन विप्राणां सञ्जहे स्वकुलं विभुः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; व्यवसितः—निश्चय करते हुए; राजन्—हे राजा; सत्य-सङ्कल्पः—जिसकी इच्छा सदैव सच सिद्ध है; ईश्वरः—भगवान् ने; शाप-व्याजेन—शाप के बहाने; विप्राणाम्—ब्राह्मणों के; सञ्जहे—समेट लिया; स्व-कुलम्—अपने वंश को; विभुः—सर्वशक्तिमान।

हे राजा परीक्षित, जब परम शक्तिशाली भगवान् ने, जिनकी इच्छा सदैव पूरी होकर रहती है, इस प्रकार अपने मन में निश्चय कर लिया, तो उन्होंने ब्राह्मणों की सभा द्वारा दिये गये शाप के बहाने अपने परिवार को समेट लिया।

तात्पर्य : श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने इस श्लोक पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण टीका की है। वे कहते हैं कि चूँकि भगवान् कृष्णचन्द्र के मनोभाव सदैव पूर्ण होते हैं, इसलिए पूरे विश्व के लाभ को ध्यान में रखते हुए ही उन्होंने ब्राह्मणों द्वारा शाप के बहाने अपने वंश का विनाश कर डाला। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं से साम्य दिखलाया है, जो कि साक्षात् कृष्ण हैं और अपने ही भक्त के रूप में प्रकट हुए थे।

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने प्रथम स्वांश नित्यानन्द प्रभु एवं अद्वैत प्रभु के साथ साथ प्रकट हुए। ये तीनों—चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु वैष्णव आचार्यों द्वारा विष्णुतत्त्व अर्थात् भगवान् के संपूर्ण पद की कोटि में परिगणित होते हैं। इन तीनों प्रभुओं ने अनुभव किया कि भविष्य में इनके वीर्यज वंशज अवांछित मान्यता प्राप्त कर लेंगे और गर्वित होने से वास्तविक वैष्णव-गुरुओं अथवा भगवान् के प्रतिनिधियों के विरुद्ध शोचनीय अपराध करेंगे।

जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है (*ममैवांशः*), प्रत्येक जीव परमेश्वर का भिन्नांश है। मूलतः प्रत्येक जीव ईश्वर का पुत्र है, किन्तु अपनी लीलाएँ करने के लिए भगवान् कतिपय अतियोग्य जीवों को चुनकर उन्हें अपने सम्बन्धियों के रूप में जन्म लेने देते हैं। किन्तु ऐसे वंशज जो भगवान् के निजी परिवार के सदस्य के रूप में प्रकट होते हैं, अपने पद से निस्सन्देह गर्वित हो सकते हैं और सामान्य जनों से मिलने वाले महान् सम्मान का दुरुपयोग कर सकते हैं। इस तरह ऐसे लोग कृत्रिम रूप से

अनुचित सम्मान पाने के कारण उन लोगों को आध्यात्मिक प्रगति के पथ से भगवान् के प्रतिनिधि रूप शुद्ध भक्तों की शरण में जाने से दूसरी ओर मोड़ सकते हैं। *भगवद्गीता* के बारहवें अध्याय के अन्तिम आठ श्लोकों में भगवान् द्वारा उन भक्तों का वर्णन किया गया है, जिन्हें *आचार्य* का कार्य करने की अनुमति दी गई है। दूसरे शब्दों में, मात्र भगवान् कृष्ण के वंश में जन्म लेने से गुरु बनने की पात्रता प्राप्त नहीं होती, क्योंकि *भगवद्गीता* के अनुसार *पिताहमस्य जगतः*—हर जीव भगवान् के परिवार का सदस्य है। *भगवद्गीता* में कृष्ण कहते हैं *समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्तिन प्रियः*—मैं हर एक पर समभाव रखता हूँ, कोई न तो मेरा शत्रु है, न विशिष्ट मित्र है। यदि भगवान् का कोई विशेष परिवार है, जैसे कि यदुवंश, तो ऐसे परिवार की विशेष योजना बद्धजीवों को आकर्षित करने के लिए भगवान् की लीलाओं के कारण ही है। जब कृष्ण अवतरित होते हैं, तो वे सामान्य व्यक्ति की तरह कार्य करते हैं, जिससे जीव उनकी लीलाओं के प्रति आकृष्ट हों। इसलिए कृष्ण ऐसा कार्य करते थे, मानो यदुवंश उनका निजी परिवार हो, जबकि तथ्य यह है कि प्रत्येक जीव उनके परिवार का सदस्य है।

किन्तु सामान्य लोग आध्यात्मिक ज्ञान के उच्च सिद्धान्तों को न समझ पाने के कारण प्रामाणिक गुरु की योग्यताओं को आसानी से भूल जाते हैं और बजाय इसके वे भगवान् के तथाकथित परिवार में उत्पन्न लोगों को आवश्यकता से अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कोई सन्तान न छोड़कर आध्यात्मिक प्रबुद्धता के मार्ग के इस अवरोध से अपने को बचाया। यद्यपि महाप्रभु के दो विवाह हुए, किन्तु वे निःसन्तान थे। भगवान् स्वरूप नित्यानन्द प्रभु ने भी अपने पुत्र श्री वीरभद्र के असली पुत्रों को स्वीकार नहीं किया। इसी प्रकार अद्वैत आचार्य ने अच्युतानन्द तथा दो अन्य पुत्रों के अतिरिक्त अन्य पुत्रों से रिश्ता तोड़ लिया था। अद्वैत आचार्य के अत्यन्त आज्ञाकारी पुत्र अच्युतानन्द के कोई सन्तान न थी और शेष छह पुत्रों में से तीन पुत्र भक्ति के मार्ग से च्युत हो गये थे, इसलिए उन्हें परित्यक्त पुत्र माना जाता है। दूसरे शब्दों में, चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव से तथाकथित वीर्यज परिवार (सन्तान) की परम्परा चलाकर संभ्रान्ति पैदा करने की सुविधा नहीं मिली। जो व्यक्ति वैदिक प्रमाण से परम सत्य को समझता है, उसे चाहिए कि स्मार्तों द्वारा वीर्यज परम्परा को मान्यता प्रदान न करे।

अन्य आचार्यों ने भी अपने ही परिवारों में इस बात को करके दिखाया है। हमारे प्रिय गुरु श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद जो *श्रीमद्भागवतम्* के इस ग्रंथमाला के महान् भाष्यकार हैं, शुद्ध भक्तों के

परिवार में जन्मे थे और उनमें बाल्यकाल से ही शुद्ध भक्ति के लक्षण प्रकट थे। अन्त में श्रील प्रभुपाद पाश्चात्य देशों में आये और उन्होंने विश्व-भर में कृष्णभावनामृत आन्दोलन को स्थापित करने में अद्वितीय आध्यात्मिक शक्ति का प्रदर्शन किया। कुछ ही वर्षों में उन्होंने वैदिक दर्शन के पचास से अधिक बहुत खण्डों का अनुवाद किया। अपने व्यावहारिक कार्यों से वे भगवान् के सर्वाधिक शक्तिप्रदत्त प्रतिनिधि जाने जाते हैं। फिर भी उनके अपने परिवार के ही सदस्य, कृष्ण-भक्त होते हुए भी भक्ति के आदर्श मानदण्ड को प्राप्त नहीं कर सके, अतः इस्कॉन के सदस्यों ने उन पर ध्यान नहीं दिया। इस्कॉन के सदस्यों की सहज प्रवृत्ति श्रील प्रभुपाद के परिवार के सदस्यों के प्रति सम्मान एवं पूजा की होगी। किन्तु कृष्ण की व्यवस्था के फलस्वरूप ये सदस्य शुद्ध भक्ति के धरातल पर नहीं हैं, अतः इस्कॉन के सदस्य उन पर कोई ध्यान नहीं देते, अपितु उन उच्च वैष्णवों की पूजा करते हैं, जिनमें वैष्णवों के गुण होते हैं, चाहे वे कहीं भी जन्मे हों। दूसरे शब्दों में, सम्मानित व्यक्ति बनने के लिए जन्म कोई योग्यता नहीं है, भले ही वह भगवान् के ही परिवार में, या कि आचार्य के परिवार में क्यों न जन्मा हो; किसी सामान्य धनी या विद्वत् परिवार का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

भारत में *नित्यानन्द वंश* नामक जाति के लोग हैं, जो अपने को नित्यानन्द का प्रत्यक्ष वंशज मानते हैं, अतएव भक्ति में सर्वोच्च सम्मानित पद का अधिकारी बताते हैं। इस सन्दर्भ में श्रील प्रभुपाद ने *भक्तिरसामृत सिन्धु* में लिखा है, “मध्य युग में श्री चैतन्य महाप्रभु के महान् संगी नित्यानन्द के तिरोधान के बाद पुरोहितों के एक वर्ग ने अपने को नित्यानन्द के वंशज होने का दावा किया और अपने को *गोस्वामी* जाति का नाम दिया। उन्होंने यह भी दावा किया कि भक्ति करने और उसका प्रसार करने का अधिकार एकमात्र इसी जाति को है, जो *नित्यानन्द वंश* कहलाती है। इस तरह कुछ समय तक वे अपनी बनावटी शक्ति दिखलाते रहे, जब तक कि गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के शक्तिशाली आचार्य श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने उनके इस विचार को ध्वस्त नहीं कर दिया। कुछ समय तक विकट संघर्ष चला, किन्तु इसमें सफलता मिली और अब यह अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि भक्ति किसी जातिविशेष के लोगों तक ही सीमित नहीं है। यही नहीं, जो कोई भी भक्ति में लगा है, वह पहले से ही उच्च जाति का ब्राह्मण है। इस तरह इस आन्दोलन के लिए श्रील भक्तिसिद्धान्त

सरस्वती ठाकुर का संघर्ष सफल हुआ है। उन्हीं के बल के आधार पर पर आज ब्रह्माण्ड के किसी भी भाग का कोई भी व्यक्ति गौड़ीय वैष्णव बन सकता है।”

दूसरे शब्दों में, आध्यात्मिक ज्ञान का सार यह है कि प्रत्येक जीव, चाहे वह आज जिस पद पर भी हो मूलतः भगवान् का दास है और भगवान् का यही मिशन है कि इन पतित जीवों का उद्धार किया जाय। कोई भी जीव जो भगवान् के या उनके प्रामाणिक प्रतिनिधि के चरणकमलों पर फिर से शरण लेना चाहता है, उसका भूतकाल कैसा भी रहा हो, वह भक्तियोग के विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करने से शुद्ध हो सकता है और उच्च कोटि के ब्राह्मण की तरह कर्म कर सकता है। तो भी, भगवान् के वंशज अपने को अपने पूर्वज के चरित्र तथा पद का उत्तराधिकारी माने रहते हैं। इस तरह भगवान् जो कि सम्पूर्ण विश्व के तथा विशेष रूप से अपने भक्तों के शुभचिन्तक हैं अपने वंशजों की विवेक शक्ति को इस तरह विमोहित करते हैं कि ये वंशज पथभ्रष्ट प्रतीत होने लगते हैं और भगवान् का प्रतिनिधि बनना अर्थात् कृष्ण की इच्छा पर आत्मसमर्पण प्रधान रह जाता है।

स्वमूर्त्या लोकलावण्यनिर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् ।

गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः ॥ ६ ॥

आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यञ्जसा नु कौ ।

तमोऽनया तरिष्यन्तीत्यगात्स्वं पदमीश्वरः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

स्व-मूर्त्या—अपने ही स्वरूप से; लोक—सारे जगत् के; लावण्य—सौन्दर्य; निर्मुक्त्या—खींच लेने वाले; लोचनम्—नेत्रों को; नृणाम्—मनुष्यों के; गीर्भिः—उसके शब्दों से; ताः स्मरताम्—उनका स्मरण करने वालों के; चित्तम्—मन को; पदैः—अपने चरणों से; तान् ईक्षताम्—उन्हें देखने वालों के; क्रियाः—शारीरिक कार्य (चलना, फिरना इत्यादि) .); आच्छिद्य—आकर्षित करके; कीर्तिम्—उसकी कीर्ति को; सु-श्लोकाम्—सर्वश्रेष्ठ श्लोकों द्वारा प्रशंसित; वितत्य—प्रसार करके; हि—निश्चय ही; अञ्जसा—सरलतापूर्वक; नु—निस्सन्देह; कौ—पृथ्वी पर; तमः—अज्ञान; अनया—उस (कीर्ति) द्वारा; तरिष्यन्ति—लोग पार कर जाते हैं; इति—इस प्रकार सोचकर; अगात्—प्राप्त किया; स्वम् पदम्—अपना इच्छित स्थान; ईश्वरः—भगवान् ने।

भगवान् कृष्ण समस्त सौन्दर्य के आगार हैं। सारी सुन्दर वस्तुएँ उन्हीं से निकलती हैं और उनका स्वरूप इतना आकर्षक है कि वह अन्य सारी वस्तुओं से आँखों को हटा देता है, अतः जो उनकी तुलना में सौन्दर्यविहीन प्रतीत होती हैं। जब भगवान् कृष्ण इस पृथ्वी पर थे, तो वे सबों के नेत्रों को आकर्षित कर लेते थे। जब कृष्ण बोलते थे, तो उनके शब्द उन सबों के मन को आकृष्ट कर लेते थे, जो उनका स्मरण करते थे। लोग कृष्ण के चरणचापों को देखकर आकृष्ट हो जाते थे और अपने शारीरिक कार्यों को वे उनके अनुयायी बनकर उन्हें ही अर्पित करने की

इच्छा करने लगते थे। इस तरह कृष्ण ने आसानी से अपनी कीर्ति का विस्तार कर लिया था, जिसका गायन अत्यन्त वदान्य एवं अनिवार्य वैदिक श्लोकों के रूप में विश्व-भर में किया जाता है। भगवान् कृष्ण मानते थे कि इस कीर्ति का श्रवण तथा कीर्तन करने से ही भविष्य में जन्म लेने वाले बद्धजीव अज्ञान के अंधकार को पार कर सकेंगे। इस व्यवस्था से तुष्ट होकर वे अपने इच्छित गन्तव्य के लिए विदा हो गये।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी के अनुसार ये दोनों श्लोक यह इंगित करते हैं कि जिन उद्देश्यों के लिए भगवान् कृष्ण ने अवतार लिया था, उन्हें पूरा प्राप्त कर लेने के बाद, वे अपने आध्यात्मिक जगत में लौट गये। इस भौतिक जगत में लोगों में सुन्दर वस्तु को देखने की लालसा होना स्वाभाविक है। किन्तु भौतिकतावादी जीवन में हमारी चेतना प्रकृति के तीनों गुणों से दूषित हो जाती है, जिससे हम सौन्दर्य तथा आनन्द प्रदान करने वाली भौतिक वस्तुओं के लिए लालायित रहते हैं। इन्द्रियतृप्ति की भौतिकतावादी विधि अधूरी है, क्योंकि प्रकृति के नियम हमें भौतिक जीवन में सुखी या तुष्ट नहीं रहने देते। स्वभावतः जीव परमेश्वर का नित्य दास है और वह भगवान् के असीम सौन्दर्य एवं आनन्द को सराहने के निमित्त है। भगवान् कृष्ण परम सत्य हैं और समस्त सौन्दर्य तथा आनन्द के आगार हैं। कृष्ण की सेवा करके हम भी उनके सौन्दर्य तथा आनन्द के सागर के भागी बन सकते हैं। इस तरह सुन्दर वस्तुओं को देखने तथा जीवन का भोग करने की हमारी इच्छा पूरी तरह संतुष्ट हो सकेगी। उदाहरण के रूप में, हाथ भोजन का स्वतंत्र रूप से भोग नहीं कर सकता, किन्तु आमाशय को भोजन प्रदान करके अप्रत्यक्षतः उसे आत्मसात् कर सकता है। इसी तरह कृष्ण की सेवा करके भगवान् का अंश-स्वरूप-जीव असीम सुख प्राप्त कर सकता है।

अचिन्त्य भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने असली रूप को प्रदर्शित करके जीवों को, अपने रूप के सिवा सौन्दर्य के दूसरे रूपों की व्यर्थ तलाश करने से मुक्त कर दिया है, क्योंकि उनका रूप समस्त सुन्दर वस्तुओं का स्रोत है। इससे उनके चरणकमलों के दर्शन मात्र से भाग्यशाली जीव, कर्मियों के अपवित्र प्रयासों—अपनी इन्द्रियतृप्ति के ही लिए स्थूल आनन्द की खोजों और भगवत्भक्ति से अपने कार्यकलापों पर परदा डालने के अभ्यास के बीच अन्तर कर सकता है। यद्यपि दार्शनिकगण ईश्वर के स्वभाव के बारे में निरन्तर अनुमान लगाते रहते हैं, किन्तु भगवान् कृष्ण ने अपने असली दिव्य रूप

तथा कर्मों को प्रदर्शित करके अपने विषय में अनुमान की भ्रान्तियों से जीव को मुक्त कर दिया। ऊपर से कृष्ण के रूप, वचन तथा कार्य सामान्य बद्धजीवों जैसे लगते हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि भगवान् तथा जीवों के कार्यों की यह ऊपरी समानता भगवान् द्वारा दी गई दयामय छूट है, जिससे बद्धजीव उनके प्रति आकृष्ट हों और आनन्द तथा ज्ञान के शाश्वत जीवन हेतु भगवद्धाम वापस जाने के योग्य बन सकें। जीवों की समझ में आने योग्य अपने ही आध्यात्मिक स्वरूप तथा धाम को उन्हें दिखलाकर, भगवान् कृष्ण ने उनकी मिथ्या भोगवादी प्रवृत्ति को भगाकर, अपने प्रति दीर्घकालीन उपेक्षा को दूर किया। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, यदि कोई व्यक्ति श्रीकृष्ण के पद को भगवान् के रूप में समझ लेता है, तो वह भौतिक माया के पाश में पुनः नहीं आता। ऐसे पतन को तभी बचाया जा सकता है, जब कोई व्यक्ति प्रामाणिक वैदिक ग्रंथों से भगवान् के अद्वितीय दिव्य रूप तथा सौन्दर्य के विषय में निरन्तर श्रवण करे।

जैसाकि *भगवद्गीता* (२.४२-४३) में बतलाया गया है—

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्य विपश्चितः ।

वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥

कामात्मानः स्वर्ग परा जन्म कर्मफल प्रदाम् ।

क्रियाविशेष बहुलां भागैश्वर्यगतिं प्रति ॥

“अल्पज्ञानी मनुष्य वेदों के उन अलंकारिक शब्दों के प्रति अत्यधिक आसक्त रहते हैं, जो स्वर्ग की प्राप्ति, अच्छे जन्म, शक्ति इत्यादि के लिए विविध सकाम कर्म करने की संस्तुति करते हैं। इन्द्रियतृप्ति तथा ऐश्वर्यमय जीवन की अभिलाषा के कारण ही वे ऐसा कहते हैं कि इससे बढ़कर और कुछ नहीं है।”

दूसरी ओर, वैदिक वाङ्मय के कुछ अंश बद्धजीव को भौतिक इन्द्रियतृप्ति प्रदान करने और साथ ही उसे वैदिक आदेशों का पालन करने के लिए धीरे धीरे अनुकूल बनाने के लिए हैं। वेदों के वे अंश, जो नियमित इन्द्रियतृप्ति के लिए सकाम कर्म की संस्तुति करते हैं स्वयं में घातक हैं, क्योंकि जो जीव इन कार्यों में लग जाता है, वह प्रदत्त भौतिक भोगों में आसानी से फँस जाता है और वेदों के चरम प्रयोजन की उपेक्षा करने लगता है। वैदिक वाङ्मय का चरम उद्देश्य जीव को उसकी मूल चेतना तक

वापस लाना है, जिसमें वह भगवान् के नित्य दास की तरह कार्य करता है। भगवान् की सेवा करके जीव भगवद्धाम में उनके सान्निध्य में असीम आध्यात्मिक आनन्द का भोग कर सकता है। अतएव, जो व्यक्ति सच्चे दिल से कृष्णभावनामृत में आगे बढ़ने का इच्छुक हो, उसे भगवान् की शुद्ध भक्ति से सम्बन्धित वैदिक साहित्य का श्रवण करना चाहिए। उसे कृष्णभावनामृत में आगे बढ़े हुए लोगों से सुनना चाहिए और ऐसी व्याख्याओं से बचना चाहिए, जो भोगेच्छाओं को उद्दीप्त करें।

जब क्षुद्र जीव अन्ततः इस जगत के क्षणिक कार्यकलापों एवं भगवान् त्रिविक्रम, कृष्ण, के दिव्य कार्यकलापों में अन्तर करने में समर्थ होता है, तो वह भगवान् की भक्ति में लग जाता है और अपने हृदय से भौतिकवाद के श्याम आवरण को हटा देता है। तब उसे इन्द्रियतृप्ति की कोई इच्छा नहीं होती, जिसे पाप तथा पुण्य के दो शीर्षकों के अन्तर्गत भोगा जाता है। दूसरे शब्दों में, यद्यपि इस जगत में लोगों को पापी या पुण्यात्मा माना जाता है, किन्तु भौतिक धरातल पर पाप तथा पुण्य दोनों ही निजी तृप्ति के लिए सम्पन्न किये जाते हैं। यदि मनुष्य यह समझ ले कि उसका असली सुख कृष्ण को आनन्द प्रदान करने में निहित है, तो भगवान् कृष्ण ऐसे भाग्यशाली जीव को अपने धाम ले जाते हैं, जो गोलोक वृन्दावन कहलाता है। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार भगवान् सर्वप्रथम निष्ठावान् व्यक्ति को अपनी लीलाएँ सुनने का अवसर प्रदान करते हैं। जब भक्त ऐसी कथाओं के प्रति स्वेच्छा से आकृष्ट होने लगता है, तो वे इस जगत में प्रकट होने वाली अपनी आध्यात्मिक लीलाओं में उसे भाग लेने का अवसर प्रदान करते हैं। किसी एक ब्रह्माण्ड में हो रही भगवान् की लीलाओं में भाग लेने से जीव भौतिक जगत से पूरी तरह विरक्त हो जाता है और अन्त में भगवान् उसे दिव्य आकाश में अपने निजी धाम ले जाते हैं।

मूर्ख लोग भगवान् द्वारा प्रदत्त इस तात्त्विक लाभ को नहीं समझ पाते, किन्तु भगवान् कृष्ण ऐसे मूर्खों को नश्वर जगत के मिथ्या भोग में लीन होने से बचाकर, उन्हीं के लाभ के लिए कार्य करते हैं। वे उन्हें अपने अनुपम दिव्य सौन्दर्य, दिव्य वाणी तथा दिव्य कार्यकलाप दिखलाकर ऐसा करते हैं। श्रील जीव गोस्वामी ने इंगित किया है कि *तमोऽनया तरिष्यन्ति* यह सूचित करता है कि यद्यपि भगवान् कृष्ण ५,००० वर्ष पूर्व अवतीर्ण हुए थे, किन्तु जो व्यक्ति भगवान् के कार्यों, रूप तथा शब्दों को सुनता और उनका कीर्तन करता है, उसे वैसा ही लाभ प्राप्त होगा, जैसाकि कृष्ण के उन समसामयिकों को,

जिन्होंने इनका साक्षात् अनुभव किया था। दूसरे शब्दों में, वह भी भौतिक जगत के अंधकार को पार कर जायेगा और भगवद्धाम को प्राप्त होगा। इस प्रकार श्रील जीव गोस्वामी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि सारे जीवों को ऐसा उस्थ गन्तव्य उपलब्ध हो सकता है, तो भगवान् के निजी संगी यादवों को वह अवश्य ही प्राप्त हुआ होगा।

इस श्लोक में कहा गया है कि कृष्ण, अपने सौन्दर्य से, उन्हें देखने वालों की दृष्टि को चुरा लेते थे। कृष्ण की बोलचाल इतनी आकर्षक थी कि उन्हें सुनने वाले अवाक् रह जाते थे। चूँकि न बोलने वाले प्रायः बहरे भी होते हैं, अतएव भगवान् के शब्द सुनने वालों के कानों को भी चुरा लेते थे, क्योंकि वे भगवान् की वाणी के अतिरिक्त अन्य कुछ भी सुनने में रुचि नहीं लेते थे। अपने पदचापों का सौन्दर्य दिखलाकर कृष्ण, उन लोगों की भौतिक कार्य करने की शक्ति को हर लेते थे, जो उन्हें देखते थे। इस तरह इस जगत में अपने प्राकट्य से कृष्ण ने मानव जाति की इन्द्रियों को हर लिया। दूसरे शब्दों में उन्होंने लोगों को अंधा, गूँगा, बहरा, उन्मत्त तथा अन्यथा अशक्त बना दिया। इसीलिए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर प्रश्न करते हैं, “जब उन्होंने लोगों की हर वस्तु छीन ली तो उन्हें दयालु कौन कहेगा? वे तो एक चोर हैं।” इस तरह अप्रत्यक्ष रूप में वे भगवान् के सौन्दर्य की सर्वाधिक प्रशंसा करते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यह भी इंगित करते हैं कि यद्यपि कृष्ण ने असुरों का नाश करके उन्हें मुक्ति प्रदान की, किन्तु जो लोग उनके प्रति आकृष्ट थे उन्हें उन्होंने शुद्ध भगवत्प्रेम प्रदान दिया और उन्हें अपने सौन्दर्य-सागर में निमग्न कर दिया। इस तरह कृष्ण उस व्यक्ति के सदृश नहीं है, जो बिना सोचे-विचारे दान देता है। और कृष्ण इतने दयालु हैं कि उन्होंने न केवल पृथ्वी के निवासियों को ही सर्वोच्च वर दिया, अपितु व्यासदेव जैसे महान् सन्त-पुरुषों को सुन्दर काव्यमय श्लोकों में अपनी लीलाओं को वर्णन करने की शक्ति प्रदान की। इस तरह भविष्य में इस पृथ्वी पर उत्पन्न लोग उस कीर्ति-रूपी नौका से जन्म-मृत्यु के सागर को सरलता से पार कर सकेंगे। वस्तुतः आज हममें से, जो लोग श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद की कृपा से *श्रीमद्भागवत* के भक्तिवेदान्त तात्पर्य के पारदर्शी माध्यम से कृष्ण की महिमा का आनन्द लूट रहे हैं, वे कृष्ण-कृपा के भाग्यशाली प्राप्तकर्ता हैं, क्योंकि कृष्ण आगे उत्पन्न होने वालों पर भी दयालु हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *अमरकोश* से उद्धरण देते हुए यह भी कहा है *पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्म्यङ्घ्रि वस्तुषु* इसमें *पदम्* की संभव परिभाषाएँ इस प्रकार हो सकती हैं, “जो निश्चित किया जा चुका है,” “उद्धार का स्थान,” “लक्ष्मी,” “पाँव” अथवा “वस्तु”। इस तरह वे *पदम्* का अर्थ *व्यवसित* भी देते हैं अर्थात् वह जो निश्चित हो चुका है। दूसरे शब्दों में *अगात् स्वं पदम् ईश्वरः*—यह कथन न केवल यह बतलाता है कि कृष्ण अपने धाम गये, अपितु यह भी कि कृष्ण ने अपने संकल्प को साकार किया। यदि हम यह कहते हैं कि कृष्ण अपने नित्य धाम लौट गये, तो इसका अर्थ यह होता है कि इसके पूर्व कृष्ण अपने धाम से अनुपस्थित थे और अब लौट रहे हैं। इसलिए विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यह इंगित करते हैं कि सामान्य भाव में यह कहना सही नहीं है कि कृष्ण “अपने धाम वापस गये।” *ब्रह्म-संहिता* के अनुसार भगवान् कृष्ण वैकुण्ठ-लोक में अपने धाम में सदैव उपस्थित रहते हैं। फिर भी अपनी अहैतुकी कृपा से समय-समय पर वे अपने को भौतिक जगत में भी प्रकट करते हैं। दूसरे शब्दों में, ईश्वर सर्वव्यापक हैं। वे हमारे समक्ष उपस्थित होने पर भी, उसी समय अपने धाम में रहते हैं। सामान्य आत्मा अर्थात् जीव परमात्मा की तरह सर्वव्यापक नहीं है, इसलिए भौतिक जगत में अपनी उपस्थिति के कारण जीव आध्यात्मिक जगत से अनुपस्थित रहता है। वस्तुतः हम आध्यात्मिक जगत या वैकुण्ठ से अपनी अनुपस्थिति के कारण कष्ट पाते हैं। किन्तु भगवान् सर्वव्यापक हैं, इसीलिए विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *अगात् स्वं पदम्* शब्दों से यह अर्थ निकाला है कि कृष्ण ने जो इच्छा की, उन्हें वही प्राप्त हुआ। भगवान् सर्वव्यापक हैं और अपनी पूर्ण इच्छाओं को पूरा करने में स्वतंत्र हैं। इस जगत में उनके प्राकट्य तथा अन्तर्धान की तुलना सामान्य भौतिक कार्यों से कभी नहीं की जानी चाहिए।

विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *श्रीमद्भागवत* (३.२.७) के तृतीय स्कन्ध के प्रारम्भ में वर्णित उद्धव के कथन को उद्धृत किया है, जिसमें उद्धव ने कृष्ण के तिरोधान की तुलना सूर्यास्त से की है। इस श्लोक के तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद ने लिखा है, “सूर्य से कृष्ण की तुलना अत्यन्त उपयुक्त है। सूर्य के अस्त होते ही अंधकार स्वयमेव छा जाता है। किन्तु सामान्य लोग जिस अंधकार का अनुभव करते हैं, उससे न तो सूर्योदय के समय, न ही सूर्यास्त के समय, सूर्य प्रभावित होता है। कृष्ण का प्राकट्य तथा लोप सूर्य के ही समान हैं।” वे असंख्य ब्रह्माण्डों में प्रकट और लोप होते रहते हैं और जब तक वे

किसी एक ब्रह्माण्ड में रहते हैं, तब तक उसमें दिव्य प्रकाश रहता है, किन्तु वे जिस लोक से चले जाते हैं, उसमें अंधकार छा जाता है। तो भी उनकी लीलाएँ सदा सदा चलने वाली हैं। भगवान् किसी न किसी ब्रह्माण्ड में सदैव उपस्थित रहते हैं, जिस तरह सूर्य पूर्वी या पश्चिमी गोलार्द्ध में से किसी में सदा उपस्थित रहता है। सूर्य सदैव ही भारत या अमेरिका में उपस्थित रहता है, किन्तु जब सूर्य भारत में रहता है, तो अमरीकी भूभाग में अंधकार रहता है और जब सूर्य अमेरिका में रहता है, तो भारतीय गोलार्द्ध अंधकार में रहता है।”

श्रील जीव गोस्वामी ने ग्यारहवें स्कंध के अन्त से एक श्लोक उद्धृत किया है, जिससे और भी स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् का धाम उन्हीं की तरह शाश्वत है “हे महाराज! समुद्र तुरन्त ही द्वारका को निगल गया और अपने साथ भगवान् के निजी धाम को, जिसे उन्होंने त्याग दिया था, बहा ले गया। भगवान् मधुसूदन सदैव द्वारका में उपस्थित रहते हैं, जिसके स्मरण मात्र से हर प्रतिकूल वस्तु नष्ट हो जाती है। यह शुभ स्थानों में सर्वाधिक शुभ है।” (भागवत ११.३१.२३-२४) जिस तरह रात्रि द्वारा सूर्य निगला जाता प्रतीत होता है, उसी तरह कृष्ण अथवा उनका धाम या उनका वंश भी लुप्त होता प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में भगवान् तथा उनका साज-सामान—धाम तथा वंश—उसी तरह नित्य हैं, जिस तरह सूर्य सदैव आकाश में रहता है। इस सन्दर्भ में श्रील प्रभुपाद कहते हैं, “जिस प्रकार सूर्य प्रातःकाल उदय होता है और क्रमशः सिर के ऊपर जाकर पुनः एक गोलार्ध में अस्त होता है और उसी समय दूसरे में उदय होता है, उसी तरह एक ब्रह्माण्ड में से भगवान् कृष्ण का लोप एवं साथ साथ अन्य लोक में उनकी विभिन्न लीलाओं का शुभारम्भ होता है। ज्योंही एक लीला समाप्त होती है, यह दूसरे ब्रह्माण्ड में प्रकट होती है। इस तरह उनकी नित्य लीला बिना अन्त के चलती रहती है।”

श्रीराजोवाच

ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसेविनाम् ।

विप्रशापः कथमभूद्वृष्णीनां कृष्णचेतसाम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने कहा; ब्रह्मण्यानाम्—ब्राह्मणों के प्रति आदर-भाव रखने वालों का; वदान्यानाम्—दान देने वालों का; नित्यम्—सदैव; वृद्ध-उपसेविनाम्—वृद्धजनों की सेवा करने वालों का; विप्र-शापः—ब्राह्मणों का शाप; कथम्—कैसे; अभूत्—घटित हुआ; वृष्णीनाम्—वृष्णियों का; कृष्ण-चेतसाम्—कृष्ण के विचार में मग्न मन वालों का।

राजा परीक्षित ने पूछा : ब्राह्मणों ने उन वृष्णियों को कैसे शाप दिया, जो ब्राह्मणों के प्रति सदैव आदर-भाव रखते थे, दानी थे और वृद्ध तथा सम्मानित पुरुषों की सेवा करते थे तथा जिनके मन सदैव कृष्ण के विचारों में पूरी तरह लीन रहते थे ?

तात्पर्य : सामान्यतया ब्राह्मण लोग उन व्यक्तियों से रुष्ट हो जाते हैं, जो ब्राह्मण जाति का अनादर करते हैं, जो दानी नहीं हैं और जो वृद्ध सम्मान्य व्यक्तियों की सेवा करने से मुकरते हैं। किन्तु वृष्णिजन ऐसे न थे, इसीलिए राजा परीक्षित ने उन्हें *ब्राह्मण्यानाम्* अर्थात् ब्राह्मण संस्कृति के निष्ठावान अनुयायी कहा है। यही नहीं, यदि ब्राह्मण लोग क्रुद्ध भी हो गये हों, तो वे कृष्ण के ही परिवार वालों को क्यों शाप देने लगे ? चूँकि ब्राह्मण विद्वान थे, इसलिए वे यह जानते रहे होंगे कि भगवान् के निजी संगियों का विरोध करना अपराध होगा। यदुवंश को विशेष रूप से यहाँ पर *वृष्णीनाम्* तथा *कृष्णचेतसाम्* कहा गया है। दूसरे शब्दों में, वे कृष्ण के निजी लोग थे और वे सदैव कृष्ण के चिन्तन में लीन रहते थे। इसलिए यदि किसी कारण से ब्राह्मणों ने उन्हें शाप दे भी दिया, तो वह शाप किस तरह प्रभाव डालता ? परीक्षित महाराज के ये ही प्रश्न हैं।

यद्यपि इस श्लोक में वृष्णियों को *कृष्णचेतसाम्* अर्थात् सदैव कृष्ण-चिन्तन में लीन कहा गया है, किन्तु यह स्पष्ट संकेत है कि कृष्ण चाहते थे कि ब्राह्मण क्रुद्ध हों और यदुवंश को शाप दें। भगवान् अपने वंश को पृथ्वी से हटाना चाहते थे, इसीलिए कृष्ण के परिवार के छोकरो ने अप्रचलित पापपूर्ण आचरण प्रदर्शित किया।

इस घटना से यह समझना चाहिए कि जब कोई मनुष्य विष्णु के भक्तों से ईर्ष्या करता है और उनका मजाक उड़ाता है, तो उसकी *ब्रह्मण्यता* अर्थात् उच्च आध्यात्मिक योग्यता के साथ साथ श्रीकृष्ण के प्रति उसका सम्मान भी विनष्ट हो जाता है। सम्मान्य व्यक्तियों तथा असली ब्राह्मणों के निरादर तथा उपहास से सारे सद्गुण नष्ट हो जाते हैं। यदि भगवान् के भक्तों के प्रति शिष्टाचार भंग होता है, तो भगवान् अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों तक से भी क्रुद्ध हो जाते हैं और जो उनके भक्तों का विरोध करते हैं, उनका विनाश करा देते हैं। यदि मूर्ख लोग कृष्ण के परिवार वालों के वेश में वैष्णवों के प्रति शत्रुता व्यक्त करते हैं, तो ऐसे अपराधी लोग कृष्ण-वंश की सन्तानें नहीं कहे जा सकते। यही भगवान् की सबसे बड़ी समता है।

यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजसत्तम ।
कथमेकात्मनां भेद एतत्सर्वं वदस्व मे ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

यत्-निमित्तः—जिस कारण से उत्पन्न; सः—वह; वै—निस्सन्देह; शापः—शाप; यादृशः—किस तरह का; द्विज-सत्-तम—हे द्विजश्रेष्ठ; कथम्—कैसे; एक-आत्मनाम्—एक आत्मा (श्रीकृष्ण) में हिस्सा बँटाने वालों का; भेदः—मतभेद; एतत्—यह; सर्वम्—समस्त; वदस्व—कृपया बतायें; मे—मुझको ।

राजा परीक्षित पूछते रहे : इस शाप का क्या उद्देश्य था ? हे द्विजश्रेष्ठ, यह किस तरह का था ? और यदुओं में, जो एक ही जीवनलक्ष्य भागी थे, ऐसा मतभेद क्योंकर उत्पन्न हुआ ? कृपया, मुझे ये सारी बातें बतलायें ।

तात्पर्य : एकात्मनाम् का अर्थ है कि सारे यदु एक ही मत रखते थे—अर्थात् भगवान् कृष्ण ही उनके जीवन के लक्ष्य थे । इसलिए परीक्षित महाराज को यदुवंशियों में ऐसे विध्वंसक कलह का कोई स्पष्ट कारण नहीं दिख रहा था और वे वास्तविक कारण जानने के लिए उत्सुक थे ।

श्रीबादरायणिरुवाच

बिभ्रद्वपुः सकलसुन्दरसन्निवेशं
कर्माचरन्भुवि सुमङ्गलमाप्तकामः ।
आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः
संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—बादरायण-पुत्र शुकदेव गोस्वामी ने कहा; बिभ्रत्—धारण करते हुए; वपुः—दैवी शरीर; सकल—समस्त; सुन्दर—सुन्दर वस्तुओं का; सन्निवेशम्—मिश्रण; कर्म—कार्यकलाप; आचरन्—करते हुए; भुवि—पृथ्वी पर; सु-मङ्गलम्—अत्यन्त शुभ; आप्त-कामः—समस्त इच्छाएँ तुष्ट होने से; आस्थाय—निवास करके; धाम—अपने धाम (द्वारका) में; रममाणः—रमण करते हुए; उदार-कीर्तिः—अत्यन्त उदार कीर्ति वाले; संहर्तुम्—विनष्ट करने के लिए; ऐच्छत—इच्छा की; कुलम्—अपने वंश का; स्थित—वहाँ रहते हुए; कृत्य—अपने कार्य का; शेषः—कुछ भाग ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : समस्त सुन्दर वस्तुओं के सं मिश्रणरूप अपने शरीर को धारण करने वाले भगवान् ने पृथ्वी पर रहते हुए अत्यन्त शुभ कार्यो को कर्तव्यपरायणता के साथ सम्पन्न किया, यद्यपि वे बिना किसी प्रयास के अपनी सारी इच्छाएँ पहले ही पूरी कर चुके थे । अपने धाम में रहते हुए तथा जीवन का आनन्द उठाते हुए अब भगवान् ने, जिनका महिमा-गायन स्वयं उदार है, अपने वंश का संहार करना चाहा, क्योंकि अब भी उन्हें कुछ थोड़ा-सा कर्म करना शेष था ।

तात्पर्य : इस श्लोक में महाराज परीक्षित के इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि यदुवंश के शक्तिशाली सदस्यों को ब्राह्मणों द्वारा कैसे शाप दिया गया और उन्होंने अपने आपको किस तरह बंधुघाती युद्ध में विनष्ट कर दिया। *संहर्तुम् ऐच्छत कुलम्* शब्दों से यह स्पष्ट है कि भगवान् कृष्ण स्वयं ही अपने वंश को समेट लेना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने ब्राह्मणों को अपना अभिकर्ता बनाया। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यहाँ पर टिप्पणी करते हैं कि श्रीकृष्ण अपना अपार सौन्दर्य तथा अपने रूप, लीला तथा आनन्द के पराक्रम, पृथ्वी के हर निवासी को प्रदर्शित कर चुके थे। इस तरह असुरों का वध करने, भक्तों को बचाने तथा धर्म की पुनर्स्थापना करने के हेतु लिया गया उनका अवतार पूरी तरह सफल हो चुका था। जब भगवान् कृष्ण ने देखा कि उनका मन्तव्य पूरा हो चुका है और हर काम पूरी तरह से सम्पन्न हो चुका है, तो वे वृष्णियों समेत अपने दिव्य धाम वापस जाने के लिए इच्छुक हो उठे। इस तरह भगवान् ने स्वयं ही यदुवंश को ब्राह्मणों द्वारा शापित कराने की व्यवस्था की।

विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार *आप्तकामः* का अर्थ यह है कि कृष्ण सदैव आत्मतुष्ट रहते हैं, तो भी अपनी दिव्य लीलाएँ सम्पन्न करने के लिए उन्होंने अपने ही वंश के विनाश की व्यवस्था की, जिसके तीन कारण थे उन देवताओं को पुनः स्वर्ग में स्थापित करना, जिन्होंने उनकी सहायता करने के लिए यदुवंश में जन्म लिया था, अपने विष्णुतत्त्वों को उनके धामों में यथा वैकुण्ठ, श्वेतद्वीप तथा बदरिकाश्रम में पुनः स्थापित करना तथा अपने को अपने नित्य संगियों समेत संसार की दृष्टि से ओझल कर देना।

इस प्रसंग में भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने यदुवंश के विनाश के विषय में कई महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं। वे कहते हैं कि अनेक तथाकथित धार्मिक पुरुषों ने नाम कीर्तन के प्रति द्वितीय अपराध करके अर्थात् *विष्णौ सर्वेश्वरेशे तदितरसमधीः*—दूसरे जीव को सभी ईश्वरों के ईश्वर भगवान् विष्णु के समान मान करके अपने को पतित बनाया है। जो व्यक्ति मायावाद दर्शन के निर्विशेषवाद के चंगुल में आ जाता है, वह झूठे ही सोचने लगता है कि भगवान् की बहिरंगा भौतिक शक्ति उनकी अन्तरंगा दिव्य शक्ति के तुल्य है। इस तरह वह सामान्य जीव को भगवान् के तुल्य बतलाने लगता है और कृष्ण को *माया* का दूसरा पक्ष मानता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण भ्रान्त धारणा है, क्योंकि इससे ईश्वर को यथारूप समझने का अवसर हाथ से चला जाता है।

जो लोग जीवन की इस मायावादी धारणा की ओर झुकाव रखते हैं, वे निश्चित रूप से यदुवंश के सदस्यों को सभी तरह से कृष्ण के समान मानेंगे और कृष्ण के भावी वंशजों को कृष्ण के समान ही पूजेंगे। इस तरह पृथ्वी पर यदुवंश का निरन्तर अस्तित्व आध्यात्मिक ज्ञान के मार्ग में बहुत बड़ा रोड़ा और पृथ्वी पर गुरु भार बन जायेगा। इसलिए विष्णु को विष्णु के वंश के समान बताने के अपराध के खतरे से संसार को बचाने के लिए ही भगवान् ने यदुवंश को कुचल डालने का निश्चय किया।

भगवान् कृष्ण अपने भक्तों पर सदैव वत्सल रहते हैं, किन्तु जब भगवान् कृष्ण के वंशज ही उनके शत्रु या तटस्थ बन जाते हैं और वे भगवान् के शुद्ध भक्तों को प्यार नहीं करते अथवा उनके दासों से मैत्री नहीं करते, तो भगवान् के ऐसे तथाकथित पारिवारिक जन उनकी इच्छा में अवरोधक बनते हैं। इस तरह इस बात का खतरा बना रहता है कि अज्ञानी जीव उनके ऐसे शत्रुओं की पूजा करने लगे और कृष्ण के घनिष्ठ संगियों के रूप में उनका आदर करे। उदाहरणार्थ, कंस को भगवान् कृष्ण का मामा मानकर उसे कृष्ण का आज्ञाकारी दास समझना पूर्णरूपेण त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष होगा। ऐसी भ्रान्ति से ही भगवान् के विरोधियों को उनका घनिष्ठ संगी स्वीकार किया जा सकता है और कृष्ण के प्रति शत्रुभाव रखने वालों को उनके कुल में उत्पन्न शरणागत अधीन व्यक्ति माना जा सकता है। यदुवंश के विनाश का उद्देश्य मायावादियों के मिथ्या तर्क का उन्मूलन करना था, जो हर वस्तु को सभी प्रकार से एक-सा मानना चाहते हैं और यह अनुचित तर्क रखते हैं कि कृष्ण-भक्तों के शत्रु कृष्ण के पारिवारिक सदस्य हो सकते हैं।

कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमङ्गलानि

गायज्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा ।

कालात्मना निवसता यदुदेवगेहे

पिण्डारकं समगमन्मुनयो निसृष्टाः ॥ ११ ॥

विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः ।

कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

कर्माणि—सकाम कर्मों को; पुण्य—पुण्य; निवहानि—प्रदान करने वाले; सु-मङ्गलानि—अत्यन्त मंगलकारी; गायत्—(जिसके विषय में) कीर्तन करते हुए; जगत्—सारे संसार के लिए; कलि—वर्तमान पतित युग; मल—अशुद्धियाँ; अपहराणि—हरण करने वाले; कृत्वा—सम्पन्न करके; काल-आत्मना—जो कालस्वरूप है, उसके द्वारा; निवसता—निवास करते हुए; यदु-देव—यदुओं के स्वामी (वसुदेव) के; गेहे—घर में; पिण्डारकम्—पिण्डारक नामक तीर्थस्थान में; समगमन्—वे गये; मुनयः—मुनिगण; निसृष्टाः—विदा कर दिये जाने पर; विश्वामित्रः असितः कण्वः—विश्वामित्र, असित तथा कण्व;

दुर्वासा: भृगु: अङ्गिरा:—दुर्वासा, भृगु तथा अंगिरा; कश्यप: वामदेव: अत्रि:—कश्यप, वामदेव तथा अत्रि; वसिष्ठ: नारद-आदय:—वसिष्ठ, नारद इत्यादि ।

एक बार विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि तथा वसिष्ठ मुनियों ने नारद तथा अन्यो के साथ मिलकर प्रचुर पुण्य प्रदान करने वाला, परम सुख लाने वाला तथा मात्र उच्चारण करने से समस्त जगत के कलियुग के पापों को दूर करने वाला एक सकाम अनुष्ठान किया। इन मुनियों ने इस अनुष्ठान को कृष्ण के पिता एवं यदुओं के अग्रणी वसुदेव के घर में सम्पन्न किया। जब उस समय वसुदेव के घर में कालरूप में निवास कर रहे कृष्ण उत्सव की समाप्ति होने पर मुनियों को आदरपूर्वक विदा कर चुके, तो वे मुनि पिण्डारक नामक पवित्र तीर्थस्थान चले गये।

तात्पर्य : इस श्लोक में शुकदेव गोस्वामी ब्राह्मण-शाप की कहानी कहते हैं, जो भगवान् की इच्छा से यदुवंश को दिया गया। श्रीधर स्वामी के अनुसार कुछ धार्मिक अनुष्ठानों से, यथा अश्वमेध यज्ञ से पुण्य-फल उत्पन्न होते हैं। दूसरी ओर, अपनी सन्तान के लालन-पालन जैसे कार्यकलापों से वर्तमानकाल में तुरन्त आनन्द मिलता है, जबकि प्रायश्चित्त के रूप में किये गये अनुष्ठान पापों को दूर भगाते हैं। किन्तु श्लोक ११ में जिन धार्मिक कार्यों का उल्लेख हुआ है और जिन्हें *कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमंगलानि गायज्जगत्कलिमलापहराणि* शब्दों द्वारा सूचित किया गया है, वे सभी प्रकार से पवित्र थे। वे प्रचुर पुण्य एवं प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले थे और इतने शक्तिशाली थे कि इन अनुष्ठानों के महिमा गान से ही कलियुग के सारे पाप दूर हो जाते थे।

ऐसे शुभ धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न करने के लिए वसुदेव के घर में बुलाये गये मुनियों को समुचित भेंटें देकर तुष्ट किया गया और फिर कृष्ण द्वारा उन्हें पिण्डारक के लिए विदा कर दिया गया, जो अरब सागर में गुजरात के समुद्री तट से लगभग दो मील दूरी पर स्थित है। आज भी इसका प्रचलित नाम पिण्डारक ही है।

यहाँ पर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कृष्ण को *कालात्मना* अर्थात् काल का रूप या परमात्मा कहा गया है। *भगवद्गीता* के ग्यारहवें अध्याय में भगवान् कृष्ण अर्जुन के समक्ष कुरुक्षेत्र के युद्ध में भारस्वरूप राजाओं तथा सेनाओं का संहार करने के लिए कालरूप में प्रकट होते हैं। इसी प्रकार *कालात्मना निवसता यदुदेवगेहे*—कृष्ण अपने पिता वसुदेव के घर में काल के रूप में निवास कर रहे

थे। इस प्रकार यह सूचित कर रहे थे कि उनकी इच्छानुसार उनके वंश के विनाश का समय निकट आ रहा था।

क्रीडन्तस्तानुपव्रज्य कुमारा यदुनन्दनाः ।

उपसङ्गह्य पप्रच्छुरविनीता विनीतवत् ॥ १३ ॥

ते वेषयित्वा स्त्रीवेषैः साम्बं जाम्बवतीसुतम् ।

एषा पृच्छति वो विप्रा अन्तर्वत्यसितेक्षणा ॥ १४ ॥

प्रष्टुं विलज्जती साक्षात्प्रब्रूतामोघदर्शनाः ।

प्रसोष्यन्ती पुत्रकामा किं स्वित्सञ्जनधिष्यति ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

क्रीडन्तः—खेलते हुए; तान्—उन (मुनियों) को; उपव्रज्य—पास जाकर; कुमाराः—छोटे बालकों ने; यदु-नन्दनाः—यदुवंश के पुत्र; उपसङ्गह्य—मुनियों के चरणों को पकड़ कर; पप्रच्छुः—पूछा; अविनीताः—विनीत नहीं, उदंड; विनीत-वत्—विनीत की तरह बनते हुए; ते—वे; वेषयित्वा—वेश बनाकर; स्त्री-वेषैः—स्त्री के वस्त्र तथा आभूषण पहन कर; साम्बम् जाम्बवती-सुतम्—जाम्बवती के पुत्र साम्ब को; एषा—यह स्त्री; पृच्छति—पूछ रही है; वः—तुमसे; विप्राः—हे विद्वान् ब्राह्मणो; अन्तर्वली—गर्भवती; असित-ईक्षणा—श्याम नेत्रों वाली; प्रष्टुम्—पूछने के लिए; विलज्जती—शरमाई हुई; साक्षात्—प्रत्यक्ष अपने आप; प्रब्रूत—कृपया बोलें; अमोघ-दर्शनाः—आप, जिनकी दृष्टि कभी मोहित नहीं होती; प्रसोष्यन्ती—तुरन्त ही जन्म देने वाली; पुत्र-कामा—तथा पुत्र-लाभ की इच्छुक; किम् स्वित्—किसको (पुत्र या पुत्री); सञ्जनधिष्यति—जन्म देगी।

उस तीर्थस्थान में यदुवंश के तरुण बालक जाम्बवती के पुत्र, साम्ब को स्त्री के वेश में ले आये थे। उन बालकों ने खिलवाड़ करते हुए वहाँ पर एकत्र महामुनियों के पास पहुँच कर उनके चरण पकड़ लिए और बनावटी विनयशीलता से उदंडतापूर्वक उनसे पूछा, “हे विद्वान् ब्राह्मणो, यह श्याम नेत्रों वाली गर्भिणी स्त्री आप लोगों से कुछ पूछना चाहती है। वह अपने विषय में पूछने में अत्यधिक लजा रही है। वह शीघ्र ही बच्चे को जन्म देने वाली है और पुत्र प्राप्त करने के लिए अत्यन्त इच्छुक है। चूँकि आप सभी अच्युत दृष्टि वाले महामुनि हैं, अतः कृपा करके हमें बतायें कि इसकी सन्तान बालिका होगी या बालक।”

तात्पर्य : श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने निम्नलिखित टीका की है—“नारद इत्यादि मुनि ब्राह्मण थे और भगवद्भक्त थे, अतः उनके प्रति यदुवंशी बालकों का उदण्ड व्यवहार भगवान् कृष्ण के मार्ग से विचलन का द्योतक था। इसी तरह, यद्यपि प्राकृत सहजिया अपने को कृष्ण का घनिष्ठ संगी मानते हैं, किन्तु ऐसे झूठे भक्तों को समाप्त करने के लिए परम दयालु भगवान् का संकल्प पूर्णतया उचित है। ऐसे धूर्त कभी भी कृष्ण की असली सेवा नहीं करते। यदुकुमारों का छल “ऊपर से विनीत” कहा गया है,

जिसका तात्पर्य यह है कि वे कुमार विनीत नहीं थे। इसलिए भगवान् के परिवार द्वारा वैष्णवों का उपहास किये जाने से भगवद्भक्तों के प्रति महान् अपराध हुआ।”

ऐसी ही घटना श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के समय घटी, जब उनकी माता ने श्री अद्वैत आचार्य का अपमान किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने महान् वैष्णव के प्रति किये इस अपराध को स्वयं सुधारा और इस तरह महाप्रभु ने अपनी उदारता सिद्ध की। यदुवंश के विनाश की कृष्ण-लीला भी उनके भक्तों के प्रति दया का प्रदर्शन थी।

यदुकुमारों ने ब्राह्मणों, वैष्णवों तथा ऋषियों को इन्द्रियतृप्ति के भौतिक ज्ञान से मूर्खों की तरह विहीन मानकर ही जाम्बवती-पुत्र साम्ब को स्त्री का वेश धारण कराकर सन्त-सभा का मजाक उड़ाना चाहा था। भगवान् कृष्ण ने यह पाठ पढ़ाना चाहा कि महान् भगवद्भक्तों के प्रति अपने संगी साम्ब द्वारा किया गया ऐसा अपराध यदुवंश के विनाश का कारण बनेगा, जो कि उनकी लीला का ही अंग होगा।

आधुनिक काल में गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत भी ऐसा ही दुर्व्यवहार दिखलायी पड़ा। अवैध व्यक्ति अपने अनुयायियों को स्त्री का वेश प्रदान करने का छल चालू कर चुके हैं। यह कार्य कृष्ण के प्रति एक प्रकार का अपराध माना जाता है। कृष्णभक्ति को इस तरह सस्ता बनाने एवं उसका मजाक उड़ाने का ऐसा प्रयास वास्तव में असली वैष्णवों के प्रति द्वेष के कारण है, क्योंकि ये वैष्णव वैदिक वाङ्मय के विधि-विधानों के अनुसार श्रद्धापूर्वक भक्ति में लगे रहते हैं। इस प्रकार रूप गोस्वामी ने कहा है—

श्रुतिस्मृतिपुराणादि पञ्चरात्रविधि विना ।

ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते ।

“यदि कोई भगवान् के प्रति अपनी अत्यधिक भक्ति दिखाना चाहता है, किन्तु यदि उसकी भक्ति-विधि श्रुति, स्मृति, पुराणों तथा नारद पञ्चरात्र जैसे शास्त्रों के आदर्श नियमों का उल्लंघन करती है, तो उसका तथाकथित भगवत्प्रेम लोगों को आध्यात्मिक प्रगति के शुभ मार्ग से हटाकर, केवल समाज में विघ्न उत्पन्न करेगा।” (भक्तिरसामृतसिंधु १.२.१०१) कृष्णलीला में पुरुष द्वारा किसी स्त्री के वस्त्र निकाल लेने का मन्तव्य इस तथ्य की ओर संकेत करना था। ऐसा कर्म कृष्ण-भक्तों को उगने तथा उनका मजाक उड़ाने के समान है। साम्ब भगवान् का निजी संगी था। किन्तु भावी संकट, जो कि श्री

चैतन्य महाप्रभु के सड़े-गले अनुयायियों द्वारा कलियुग में उत्पन्न होना था, उसका अग्रदूत बनकर साम्ब ने जीवों की सहायता करने के लिए उपदेशात्मक लीला प्रदर्शित की, जिससे वे भक्ति के सही मार्ग पर चल सकें।

इन बालकों ने मुनियों से कहा, “हे ऋषियो, हे ब्राह्मणो, हे नारद तथा अन्य महापुरुषो! क्या आप लोग यह बता सकते हैं कि इस गर्भवती स्त्री के गर्भ से पुत्र उत्पन्न होगा या पुत्री?” शुद्ध वैष्णवों को इस तरह सम्बोधित करके उन्होंने आधुनिक युग में *सखीभक्त* की उस प्रथा चलाने वाले वंचक सम्प्रदायों का पूर्वानुमान कर लिया था, जिसमें पुरुषों को गोपियों की सखियों की तरह वस्त्र पहनाये जाते हैं। यह अवैध कार्य भगवान् के शुद्ध भक्तों का अपमान एवं उपहास स्वरूप है।

अनेक छद्म योगी जो यह सोचते हैं कि वे मोक्ष के मंच पर उच्च कोटि की भक्ति वितरण करते हैं, केवल उन व्यक्तियों को “शुद्ध भक्त” का पद प्रदान करने का प्रयास करते हैं, जो *मधुररति* (आध्यात्मिक जगत में भगवान् का माधुर्य प्रेम) के दिव्य आस्वाद से पूर्णतया अनजान होते हैं। यद्यपि वे यह जानते हैं कि सामान्य जनता भगवान् के मुक्त संगियों का अनुकरण करने के लिए अयोग्य हैं, किन्तु वे सामान्य व्यक्तियों को अश्रुओं, द्रवित हृदय तथा रोमांच जैसे आध्यात्मिक सिद्धि के अलंकारों से सज्जित कर देते हैं। इस तरह से कपटी योगी ऐसी विधि चला देते हैं, जिससे संसार भ्रमित होता है। चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु समझ चुके थे कि ऐसे छद्म योगियों या कुयोगियों के द्वारा उत्पन्न महान् संकट का पूर्वानुमान कर पाना कलियुग में असम्भव है, इसलिए उन्होंने उनमें कामोत्तेजक वस्तुओं के प्रति अविवेकपूर्ण इच्छाओं की छूत लगा दी, जिससे सामान्य व्यक्ति ऐसे छद्म योगियों को शुद्ध भक्ति के पथ से भटके हुए समझकर पहचान सकें।

यदुवंश के बालकों द्वारा, जिन्होंने साम्ब को स्त्री वेश में प्रस्तुत किया था, ब्राह्मणों तथा वैष्णवों का उपहास करके तथा उसके परिणाम स्वरूप यदुवंश का विनाश से अन्ततः अन्तिम रूप से *सहजिया सम्प्रदायों* की व्यर्थता को प्रकट कर दिया है।

श्रील जीव गोस्वामी ने पुष्टि की है कि यदुवंश के छोकरों द्वारा प्रदर्शित विनयशीलता का अभाव स्वयं भगवान् के द्वारा की गई व्यवस्था थी। दूसरे शब्दों में, यदुवंश के सदस्य अन्ततोगत्वा भगवान्

कृष्ण के संगी हैं और भगवान् की उपदेशात्मक लीला में सहायक बनने के लिए ही, उन्होंने अनैतिक प्रतीत होने वाले ढंग से आचरण किया।

एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप ।

जनयिष्यति वो मन्दा मुषलं कुलनाशनम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; प्रलब्धा:—धोखा दिये गये; मुनयः—मुनिगण; तान्—उन बालकों से; ऊचुः—बोले; कुपिता:—क्रुद्ध; नृप—हे राजा परीक्षित; जनयिष्यति—वह जन्म देगी; वः—तुम्हारे लिए; मन्दा:—रे मूर्खों; मुषलम्—मूसल को; कुल-नाशनम्—वंश का नाश करने वाले।

हे राजन्, धोखे से इस तरह उपहास का पात्र बनाये गये मुनि क्रुद्ध हो गये और उन्होंने बालकों से कहा, “मूर्खों! वह तुम्हारे लिए लोहे का एक मूसल जनेगी, जो तुम्हारे समस्त कुल का विनाश करेगा।”

तात्पर्य : बद्धजीव में चार दोष पाये जाते हैं। ये हैं भ्रम (गलती करने की प्रवृत्ति), प्रमाद (माया), करणापाटव (अपूर्ण इन्द्रियाँ) तथा विप्रलिप्सा (धोखा देने की प्रवृत्ति)। किन्तु शुद्ध भगवद्भक्तों में ये दोष नहीं पाये जाते। फिर भी भगवान् कृष्ण ने अपने ही परिवार, यदुवंश के बालकों में मनुष्य की घातक निम्न लालसाओं को प्रकट होने की व्यवस्था की। इसलिए यादव बालकों ने छद्म भक्ति-सम्प्रदाय वालों के कार्यकलापों का अनुकरण किया।

अपने तिरोधान के पूर्व ही कृष्ण ने चाहा कि मुनिगण यदुवंश के बालकों पर क्रुद्ध हों, जिससे उन्हें यह शिक्षा मिल जाय कि वैष्णवों को मूर्ख, अज्ञानी या संसारी नहीं समझा जा सकता और इस तरह उनके परिवार वालों का मिथ्या अहंकार कम हो सके। कभी कभी दिग्भ्रमित लोग छद्म भक्तों की भूमिका अदा करके शुद्ध भक्ति की वास्तविक विधि तथा उसका प्रचार कर रहे शुद्ध भक्तों को कलंकित करते हैं। ऐसे मूर्ख छद्म भक्त सोचते हैं कि भगवान् के संदेश के वास्तविक प्रचार के प्रति उनका द्वेष या घृणा ही भक्ति है, किन्तु वास्तव में यह उनके लिए तथा उनके अभागे अनुयायियों के लिए मुसीबत का कारण बनती है। शुद्ध भक्ति के प्रचारक छद्म भक्तों के कुत्सित प्रयासों का पर्दाफाश कर देते हैं। इसी तरह नारद इत्यादि मुनियों ने, जो कि उच्च कोटि के भगवद्भक्त थे, यदुवंश के बालकों को मोहग्रस्त मूर्ख कहकर सम्बोधित किया और उन्हें बतलाया कि “इस छद्म गर्भ के भीतर या साधु के छद्म वेश के भीतर से एक मूसल जन्म लेगा, जो तुम्हारे वंश के विनाश का कारण होगा।”

विशेषकर भारत में और अब तो पाश्चात्य देशों में भी दूषित इन्द्रिय भोग-कर्ताओं का एक वर्ग है, जो अपने को गौड़ीय वैष्णव भी कहते हैं और प्रेमभक्ति की सर्वोच्च दशा प्रदर्शित करने का स्वांग भरते हैं। वे घोषित करते हैं कि वे भक्ति की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त हैं और वृन्दावन में प्रदर्शित *माधुर्य लीला* के अन्तरंग कार्यों से ही उनका सरोकार है। कभी कभी वे गोपियों का वेश भी बनाते हैं और आदर्श नियमों का पालन किये बिना कृष्ण की लीलाओं में प्रवेश करने का झूठा प्रदर्शन करते हैं। *प्रेमभक्ति* के नाम पर वे कभी कभी शुद्ध कृष्ण-भक्तों के विरुद्ध घोर अपराध करते हैं। साम्ब के तथाकथित गर्भ से लोहे के मूसल के जन्म की इस घटना से स्वयं भगवान् ने ऐसी छद्म भक्ति के घातक प्रभावों की शिक्षा दी।

तच्छ्रुत्वा तेऽतिसन्नस्ता विमुच्य सहसोदरम् ।
साम्बस्य ददृशुस्तस्मिन्मुषलं खल्वयस्मयम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; श्रुत्वा—सुनकर; ते—वे; अति-सन्नस्ता:—अत्यन्त भयभीत; विमुच्य—उघाड़ कर, खोल कर; सहसा—झटपट; उदरम्—पेट को; साम्बस्य—साम्ब के; ददृशुः—उन्होंने देखा; तस्मिन्—उसके भीतर; मुषलम्—मूसल; खलु—निस्सन्देह; अयः—मयम्—लोहे का बना हुआ।

मुनियों का शाप सुनकर भयभीत बालकों ने झटपट साम्ब के पेट से कपड़े हटवाये और सचमुच उन्होंने देखा कि उसके भीतर एक लोहे का मूसल था।

तात्पर्य : नारद इत्यादि वैष्णवों के शब्दों को सुनकर यदु-बालकों ने साम्ब के पेट के ऊपर पड़े हुए वस्त्रों को हटा दिया। इस तरह धोखा देकर वैष्णवों के प्रति, उन्होंने जो अपराध किया था, उसका फल उन्हें मिल गया। वहाँ उनके वंश को विनष्ट करने वाला सचमुच का मूसल था। यह उदाहरण दिखलाता है कि दूषित समाज में छद्म का मूसल भक्तों के समाज में पाई जाने वाली शान्ति कभी नहीं ला सकता। इसके विपरीत, छद्म समस्त भक्तिविहीन कार्यों एवं छद्म भक्तों के मनमाने सिद्धान्तों को ध्वस्त करता है। यदुकुल के बालक अपनी उच्च स्थिति को उलटने के विषय में सतर्क थे और यह सोच रहे थे कि जब तक वे अपनी चाल को छिपा रखेंगे, तब तक अन्य लोग ऐसी शिष्ट धोखेधड़ी को पहचान नहीं पायेंगे। इतने पर भी वे भगवान् के भक्तों के विरुद्ध अपने घोर अपराध के फलों से अपने वंश को बचा सकने में असमर्थ थे।

किं कृतं मन्दभाग्यैर्नः किं वदिष्यन्ति नो जनाः ।
इति विह्वलिता गेहानादाय मुषलं ययुः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; कृतम्—किया गया; मन्द-भाग्यैः—अभागों द्वारा; नः—हमारे द्वारा; किम्—क्या; वदिष्यन्ति—कहेंगे; नः—हमसे; जनाः—परिवार वाले; इति—इस प्रकार कहते हुए; विह्वलिताः—विह्वल; गेहान्—अपने घरों को; आदाय—लेकर; मुषलम्—मूसल को; ययुः—चले गये।

यदुवंश के तरुण लोगों ने कहा : “ओह! यह हमने क्या कर डाला? हम कितने अभागे हैं! हमारे परिवार वाले हमसे क्या कहेंगे?” ऐसा कहते हुए तथा अतीव विक्षुब्ध होकर, वे अपने साथ उस मूसल को लेकर अपने घरों को लौट गये।

तच्चोपनीय सदसि परिम्लानमुखश्रियः ।
राज्ञ आवेदयां चक्रुः सर्वयादवसन्निधौ ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह मूसल; च—तथा; उपनीय—लाकर; सदसि—सभा में; परिम्लान—पूरी तरह कुहलाया; मुख—उनके मुखों की; श्रियः—सुन्दरता; राज्ञे—राजा से; आवेदयाम् चक्रुः—सूचित किया; सर्व-यादव—सभी यादवों की; सन्निधौ—उपस्थिति में।

वे यदु-बालक, जिनके मुख की कान्ति पूरी तरह फीकी पड़ चुकी थी, उस मूसल को राज-सभा में ले आये और समस्त यादवों की उपस्थिति में उन्होंने राजा उग्रसेन से, जो कुछ घटना घटी थी, कह सुनाई।

तात्पर्य : विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इंगित करते हैं कि राज्ञे शब्द राजा उग्रसेन के लिए आया है, श्रीकृष्ण के लिए नहीं। वे लड़के शर्म तथा भय के कारण भगवान् कृष्ण के पास नहीं गये।

श्रुत्वामोघं विप्रशापं दृष्ट्वा च मुषलं नृप ।
विस्मिता भयसन्नस्ता बभूवुर्द्वारकौकसः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; अमोघम्—व्यर्थ न जाने वाला; विप्र-शापम्—ब्राह्मणों के शाप को; दृष्ट्वा—देखकर; च—तथा; मुषलम्—मूसल को; नृप—हे राजा; विस्मिताः—चकित; भय—भय से; सन्नस्ताः—किंकर्तव्यविमूढ़; बभूवुः—हो गये; द्वारका-ओकसः—द्वारका के निवासी।

हे राजा परीक्षित, जब द्वारकावासियों ने ब्राह्मणों के अमोघ शाप को सुना और मूसल को देखा, तो वे भय से विस्मित तथा किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये।

तच्चूर्णयित्वा मुषलं यदुराजः स आहुकः ।
समुद्रसलिले प्रास्यल्लोहं चास्यावशेषितम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तत्—उसको; चूर्णयित्वा—चूरे-चूरे कराकर; मुषलम्—मूसल को; यदु-राजः—यदुओं के राजा ने; सः—उस; आहुकः—आहुक (उग्रसेन) ने; समुद्र—समुद्र के; सलिले—जल में; प्रास्यत्—फेंक दिया; लोहम्—लोहे के; च—तथा; अस्य—मूसल के; अवशेषितम्—अवशिष्ट, बचे हुए।

मूसल को चूरे-चूरे में तुड़वा कर यदुओं के राजा आहुक (उग्रसेन) ने स्वयं उन खण्डों को तथा शेष बचे लोहे के टुकड़े को समुद्र के जल में फेंक दिया।

तात्पर्य : राजा उग्रसेन ने सोचा, “साम्ब तथा अन्यो को शर्म या भय का अनुभव नहीं होना चाहिए।” अतएव श्रीकृष्ण से सलाह किये बिना ही उसने मूसल के टुकड़े करके तथा बचे हुए लोहे के छोटे टुकड़े को नगण्य मानते हुए, उन्हें समुद्र में फेंकने का आदेश दे दिया।

कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहं चूर्णानि तरलैस्ततः ।

उह्यमानानि वेलायां लग्नान्यासन्किलैरकाः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

कश्चित्—किसी; मत्स्यः—मछली ने; अग्रसीत्—निगल गई; लोहम्—लोहे को; चूर्णानि—चूरा; तरलैः—लहरों से; ततः—उस स्थान से; उह्यमानानि—ले जाया जाकर; वेलायाम्—तट पर; लग्नानि—चिपके हुए; आसन्—हो गये; किलु—निस्सन्देह; एरकाः—नरकट (विशेष प्रकार कि तूक्ष्ण धार वाली घास)।

किसी मछली ने वह लोहे का टुकड़ा निगल लिया और लोहे के शेष खण्ड लहरों द्वारा किनारे पर लग गये, जहाँ पर वे ऊँचे तीक्ष्ण नरकटों के रूप में उग आये।

मत्स्यो गृहीतो मत्स्यघ्नैर्जालेनान्यैः सहार्णवे ।

तस्योदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकोऽकरोत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

मत्स्यः—मछली; गृहीतः—पकड़ी जाकर; मत्स्य-घ्नैः—मछुआरों द्वारा; जालेन—जाल से; अन्यैः सह—अन्य मछलियों के साथ; अर्णवे—समुद्र के भीतर; तस्य—मछली के; उदर-गतम्—पेट में गये हुए; लोहम्—लोहे के खण्ड को; सः—उस (जरा) ने; शल्ये—अपने तीर में; लुब्धकः—शिकारी ने; अकरोत्—लगा लिया।

यह मछली अन्य मछलियों के साथ समुद्र में मछुवारे के जाल में पकड़ ली गई। इस मछली के पेट में स्थित लोहे के टुकड़े को जरा नामक शिकारी ले गया, जिसने उसे अपने तीर की नोक में लगा लिया।

भगवान्जातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा ।

कर्तुं नैच्छद्विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान् ने; ज्ञात—जानते हुए; सर्व-अर्थ:—हर बात का अर्थ; ईश्वर:—पर्याप्त समर्थ; अपि—यद्यपि; तत्-
अन्यथा—अन्यथा; कर्तुम्—करने के लिए; न ऐच्छत्—नहीं चाहा; विप्र-शापम्—ब्राह्मण के शाप को; काल-रूपी—काल के
रूप में प्रकट; अन्वमोदत—प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति दे दी।

इन सारी घटनाओं की महत्ता को पूर्णतया जानते हुए ब्राह्मणों के शाप को पलट सकने में समर्थ होते हुए भी भगवान् ने ऐसा करना नहीं चाहा। प्रत्युत, काल के रूप में उन्होंने खुशी खुशी इन घटनाओं को स्वीकृति दे दी।

तात्पर्य : सामान्य लोगों को आश्चर्य हो सकता है, या वे मोहग्रस्त हो सकते हैं कि भगवान् ने हँसी-खुशी से अपने वंश के शापित होने तथा विनष्ट होने की स्वीकृति क्यों प्रदान कर दी। यहाँ पर प्रयुक्त *अन्वमोदत* शब्द किसी वस्तु में प्रसन्नता व्यक्त करने या सहमति प्रदान करने का सूचक है। *कालरूपी* शब्द भी प्रयुक्त हुआ है अर्थात् काल के रूप में कृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मण-शाप की स्वीकृति दे दी। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद ने टीका की है कि भगवान् कृष्णचन्द्र ने शाप को अक्षत रखना चाहा, जिससे धर्म के असली नियमों का पालन हो सके एवं कृष्ण-वंश के धोखेबाज सदस्यों द्वारा किया गया अशोभनीय अपराध नष्ट हो सके। *भगवद्गीता* में स्पष्ट बतलाया गया है कि भगवान् के भौतिक संसार में अवतरित होने का एकमात्र उद्देश्य धर्म के मौलिक नियमों की पुनर्स्थापना करना है, जिनके द्वारा प्रकृति के नियमों से गहन दुख पा रहे बद्धजीव भगवान् कृष्ण के नित्यमुक्त दास के रूप में अपनी मूल स्थिति को फिर से प्राप्त कर सकें। इस भौतिक जगत में जीव इस कामना से आता है कि वह प्रकृति पर अपना प्रभुत्व जमा सके, यद्यपि जीव स्वामी न होकर नित्यदास होता है। अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए सम्पूर्ण जगत का उपभोग करने की इस विकृत प्रवृत्ति के कारण ही जीव आध्यात्मिक जीवन के सिद्धान्तों को विकृत करने के लिए सन्नद्ध दिखता है, जिससे धार्मिक नियम, उसकी भौतिक इन्द्रियतृप्ति के अनुकूल बन जाय। किन्तु धर्म का उद्देश्य, तो भगवान् के नियमों का पालन करते हुए उन्हें प्रसन्न करना है। इसीलिए भगवान् कृष्ण समय समय पर अपने चरणकमलों की भक्ति की सही विधि को पुनरुज्जीवित करने के लिए स्वयं आते हैं। *श्रीमद्भागवत* के ग्यारहवें स्कन्ध में यह स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् कृष्ण ने पृथ्वी पर अपनी अधिकांश लीलाएँ समाप्त कर ली थीं और अब वे अपने प्रस्थान की अन्तिम तैयारी कर रहे थे। इसलिए वे इस युग के जीवों के लिए स्पष्ट उपदेश छोड़ जाना चाहते थे कि तथाकथित धार्मिक व्यक्ति भले ही वह इतना उच्च हो कि उन्हीं के कुल में उत्पन्न हो भगवान् के शुद्ध भक्तों यथा नारद मुनि को दिये जाने वाले आदर तथा सम्मान का

उल्लंघन नहीं कर सकता। कृष्ण के शुद्ध भक्त की सेवा करने का सिद्धान्त आध्यात्मिक प्रगति के लिए इतना आवश्यक है कि भगवान् ने कलियुग के बद्धजीवों को यह बात बतलाने के लिए अपने समूचे वंश के विनाश की अचिन्त्य लीला सम्पन्न की।

श्रीमद्भागवतम् में उन संकटों की ओर इशारा किया गया है, जो भगवान् के लोप होने के बाद आयेंगे। ऐसे ही संकट श्री चैतन्य महाप्रभु के तिरोधान के बाद आए थे, क्योंकि गौड़ीय वैष्णव उन्हें साक्षात् कृष्ण मानते थे। *भागवतम्* अपनी विविध शिक्षाओं द्वारा धोखाधड़ी वाले उस छद्म धर्म को निकाल फेंकने के लिए कहती है, जो भगवान् के प्रस्थान के बाद मानव समाज में प्रचलित हो जाता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी वदान्य लीलाओं द्वारा दक्षिण भारत से उन अप-सम्प्रदायों के झूठे सिद्धान्तों को, अथवा उन छद्म भक्तों की तथाकथित शिष्य-परंपरा को उखाड़ फेंका था, जिन्होंने बौद्धों तथा जैनों के नास्तिकतावादी सिद्धान्तों को ग्रहण करके अपने को प्रभावशाली बना रखा था। इस तरह महाप्रभु ने समूचे भारत को कृष्ण-भक्ति की ओर उन्मुख किया, जिससे चैतन्य महाप्रभु और उनके अनुयायियों के विस्तृत प्रचार के कारण भगवद्भक्ति के अतिरिक्त इस विश्व में वार्ता का कोई अन्य विषय ही न रह पाये। त्रिदण्डपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने अपने श्लोक *स्त्रीपुत्रादिकथां जहृर्विषयिनः* में इस तथ्य को विस्तार से लिखा है।

श्री नरहरि सरकार ठाकुर ने अपनी पुस्तक *कृष्णभजनामृत* में श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुसरण करने का दावा करने वाले ग्यारह छद्म शिष्य परम्पराओं के गौरांगनागरी वादियों, सखीभेक वादियों इत्यादि के अनुचित कथनों को सुधारा है। ये अवैध व्यक्ति धर्म के बहाने धोखाधड़ी करते हैं और भगवान् की शुद्ध पूजा या *कथा* के नाम पर अपनी धोखेबाजी का विज्ञापन करते हैं। जिस तरह कृष्ण ने अपने ही परिवार को विनष्ट करने के लिए भीषण संघर्ष छेड़ दिया था, उसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने प्रस्थान के बाद नाना प्रकार के मायावाद तथा कर्मवाद दर्शनों से सारे संसार को आप्लावित करा दिया। उन्होंने ऐसा इसलिए किया, जिससे ग्यारह अपसम्प्रदायों अथवा अवैध शिष्य-परंपराओं से सम्बद्ध लोग तथा अनेक अन्य अपसम्प्रदाय, जो भविष्य में पैदा हों, विनष्ट हो जाँय और वे श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त न कहला पायें। उसीके साथ साथ महाप्रभु ने अपने अनुयायियों को इन धोखेबाजों की

छद्म भक्ति से पृथक् रखने की भी व्यवस्था की। गौरसुन्दर चैतन्य महाप्रभु के भक्तगण भगवान् कृष्ण की लीलाओं में महाप्रभु की लीलाओं के रहस्य को ढूँढ़ सकते हैं। भगवान् के दिव्य शरीर की लीलाओं को सामान्य संसारी विधि से नहीं समझा जा सकता। यही इस अध्याय का सार है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कंध के अन्तर्गत “यदुवंश को शाप” नामक पहले अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।